प्रकाशक—
श्री हर्षवर्द्धन सुकुल
व्यवस्थापक—सरस्वती सदन
दारागंज, प्रयाग

मुद्रक—
रघुनाथप्रसाद वर्मा
नागरी प्रेस, दारागंज, प्रयाग

सदन कसाई

ईश्वर-प्रेम का अद्भुत प्याला ! जिसने उसको पी लिया, वही पागल बन गया, वही संसार से विरक्त होकर दूर दूर अपने आराध्य-देव की खोज करने लगा। जिसकी निगाह एक बार भी उस प्याले की ओर उठी, वह नीच होकर भी उसे लेने के लिए हाथ बढ़ाता है। चांडाल होने पर भी, प्याले में छलकती हुई प्रेम की शराब गले के नीचे उतारने के लिए उसे अपने होठों से लगाता है। ईश्वर-प्रेम के प्याले की महिमा भी बड़ी अनूठी है। चाहे ऊंच हो, चाहे नीच। चाहे सज्जन हो, चाहे दुर्जन, पर वह अपने पीनेवालों को एक ही समान पागल और मतवाला बना देता है। उसके दरबार में ऊँच-नीच का भेद नहीं, उसके इजलास में जाति-गौरव का बंधन नहीं ! इसी व्यापकता के कारण ही तो सदन बेचारा भी उसकी घूंट अपने गले के नीचे उतार सका,.

वह भी भगवान की भक्ति का रस पीकर संसार में अपनी अमरता को स्थापित कर सका, क्यों न हो, जब भगवान् ही व्यापक हैं, तब उसके प्रेम के प्याले को तो व्यापक होना ही चाहिए।

बहुत दिन हुए; भारत की इसी पवित्र भूमि पर सदन ने जन्म लेकर ईश्वर-प्रेम की एक अनूठी सरिता सी बहा दी। जिसने उसकी प्रेम-सरिता में एक बार भी स्नान किया, एक बार भी उसके किनारे पर खड़ा होकर, उसकी गोद में उछलने वाली लहरियों की ओर देखा, उसका हृदय सचमुच सदन ही के समान पवित्र होगया। उसकी आँखों की पुतलियों में, इतने दिनों के बाद भी, सदन खड़ा होकर ईश्वर-प्रेम का बीन बजाने लगा। यही तो अमरता है, इसी को कहते हैं नश्वरता की सीमा को पार करके मुक्ति की गोद में खेलना। भगवान् के भक्तों को छोड़ कर यह अमरता और यह मुक्ति किसको नसीब! सदन भगवान् का था, इसीलिए भगवान् ने उसे अपनी अमूल्य निधि भी भेंट की।

सदन जाति का कसाई था। उसका काम था, जीवों को मार कर अपना पेट पालना। उसके घर यही व्यापार भी होता था। बचपन में जब सदन किसी मौन खड़े हुए पशु के गले पर छुरी चलती हुई देखता, तब उसकी आँखों में आँसू छलछला आते। वह अपने मन में दुखी होकर सोचने लगता, क्या मुझे भी बड़ा होने पर इन पशुओं को इसी तरह मारना होगा? क्या मुझे भी इनके गले पर इसी तरह छुरी चलानी होगी! नहीं, नहीं, भगवान् मुझे तुम इस काम से बरी रक्खो। मैं तुम्हारी शरण में हूँ।

सदन कभी-कभी अकेले बैठ जाता और इसी भयानक पाप से बचने के लिए घंटों हरिनाम का माला जपा करता। कभी-कभी जब काटे जाने वाले पशुओं की चिल्लाहट उसके कानों में पड़ती, तब रोने लगता, उसकी आँखों से आँसुओं का फौव्वारा सा छूट चलता। सदन के घरवाले उसको यह गति देख कर हैरान रहते थे, कहते थे—लड़का निकम्मा निकल गया। इससे घर का काम चलने को नहीं। कभी-कभी इस भक्ति के लिए सदन पर फटकार भी पड़ती थी।

पर जाति का कसाई बेचारा सदन क्या करे? पेट के लिए खाना तो चाहिए ही। उसके ऊपर जब भार पड़ा, तब वह भी जीवों को मारकर मांस बेचने का काम करने लगा। वह रोज़ जीवों को मारता, और मांस एक टोकरे में भरकर बेचने के लिए निकल जाता। पर वह अपने पाप के कारण हमेशा मन में दुखी रहता था। कभी-कभी मांस का टोकरा ज़मीन पर रख कर रोने लगता, कभी भगवान् का नाम लेकर नाचने लगता। मगर जब पेट की चिंता सताती, तब फिर उदास मन से मांस का टोकरा सिर पर रख कर मांस बेचने लगता। उसकी अजीब गति थी, अजीब दशा थी!

जब सदन से न रहा गया, तब उसने जीवों का मारना छोड़ दिया। अब वह दूसरों के यहां से मांस लाता और एक जगह बैठ कर बेचा करता था। इससे सदन की आमदनी तो कम होगई, पर वह पशुओं की चिल्लाहट अपने कानों से न सुन

सकने के कारण कुछ प्रसन्न सा रहा करता। मगर जब मांस तौलने के लिए, सदन हाथ से मांस उठाता, तब उसका जी फिर दुखी होजाता, वह फिर अपने को धिक्कारने लगता और भगवान् से रो-रोकर कहने लगता, भगवान्! क्या इस बुरे काम से तुम मेरा पिंड न छुड़ाओगे।

अन्तर्यामी भगवान् से सदन के मन का यह दुःख छिपा न रहा। मज़े की बात तो यह थी कि सदन प्रति दिन शालिग्राम की मूर्ति ही से मांस तौला करता था। उस बेचारे को क्या मालूम कि यह भगवान् की मूर्त्ति है! वह तो उसे भी अपना एक बटखरा समझता था। पर भगवान् की लीला! वे सदन के मन का हाल जान कर बटखरे ही के रूप में उसके घर जा पहुँचे।

एक दिन एक साधु सदन की दूकान के सामने से निकला। उसकी निगाह सदन के बटखरों पर पड़ी। सदन एक पलड़े पर मांस और एक पलड़े पर बटखरा रख कर नाप-तौल करने में लगा हुआ था। साधु ने बटखरों में शालिग्राम की मूर्त्ति देखी। यदि उस समय साधु के मन में सदन के प्रति घृणा का भाव पैदा हुआ हो तो आश्चर्य क्या!

साधु सदन के पास गया और शालिग्राम की मूर्त्ति की ओर इशारा करके कहने लगा—भाई! अपना वह बटखरा तू मुझे दे दे। भगवान् का प्रेमी सदन! भला भगवान् के भक्त को कब टालने लगा! उसने हंसी-खुशी अपना वह बटखरा साधु को दे दिया। यदि वह जानता कि इस बटखरे में भगवान् निवास करते

हैं, तो वह उसे साधु को कभी न देता। मगर, बेचारा जाति का कसाई, इस बात को क्या जाने ? वह तो भगवान् की उस मूर्त्ति को भी पत्थर का एक बटखरा ही समझता था !

साधु भगवान् की मूर्ति पाकर फूला न समाया। वह उसे अपनी कुटी में ले गया। पंचामृत से स्नान करा कर मूर्ति की प्रार्थना करने लगा। पर शायद साधु की उस प्रार्थना में भगवान् को मज़ा न आया, शायद उस मीठे पंचामृत में उन्हें कुछ स्वाद न मिला। वे तो केवल प्रेम के भूखे हैं। उन्हें तो प्रेम की रूखी-सूखी रोटियाँ भी अच्छी मालूम होती हैं। भगवान् ने रात को स्वप्न में साधु को संदेश दिया—तुम मुझे कहाँ उठा लाए ? मुझे तो सदन की तराजू में ही आनंद आता था। जब मैं उसकी प्रेमभरी बातें सुनता था, तब मेरा हृदय आनंद से नाच उठता था। मुझे ऐसा जान पड़ता था, मानो संसार का सारा पवित्र प्रेम सदन ही के मन में आकर इकट्ठा हो गया है। मुझे जल्दी सदन के पास ले चलो। सदन की भक्ति, सदन का प्रेम मुझे उसकी ओर खींच रहा है।

साधु बेचारा बड़ा घबड़ाया। उसे क्या मालूम था कि मांस में लिपटे रहने वाले सदन के ऊपर भगवान् की ऐसी कृपा है ! वह सबेरा होते ही सदन के पास गया और उसे अपने स्वप्न की कहानी सुना कर कहने लगा—'भाई ! लो यह भगवान् की मूर्ति है। भगवान् तुम्हारे ही पास रहना चाहते हैं।' साधु की बात सुन कर सदन प्रसन्नता से खिल उठा। उसकी आंखों से

प्रेम के आंसू गिरने लगे। वह उसी मूर्ति के सामने घुटने टेक कर कहने लगा—'भगवन् ! मैं मूर्ख, क्या जानूँ कि इस बटखरे में आप विराजमान हैं, मैं तो इसे एक मामूली बटखरा ही समझता था। महाराज; मेरे इस भयानक अपराध को क्षमा करो।'

साधु की इस स्वप्न-कथा से सदन के हृदय की भक्ति उमड़ पड़ी। उसकी रग-रग में भगवान् का प्रेम नाच उठा। ऐसी भक्ति और ऐसा प्रेम कि फिर ममता का चक्कर एक मिनट के लिए भी सदन को फँसा न सका, हृदय में भक्ति की धारा बह निकली। सदन स्वतंत्र पक्षी की तरह भगवान् के प्रेम-गगन में चक्कर लगाने लगा। न उसे घर की सुधि, न अपने बाल-बच्चों का ख्याल। केवल भगवान् की लौ से काम; वह अपना घर-द्वार छोड़ कर जगन्नाथपुरी की ओर चल पड़ा।

एक दिन मार्ग के एक गांव में सदन को शाम होगई। उसने सोचा, अब आगे कौन चले, शायद आगे थोड़ी दूर पर कोई गांव न पड़े ! सदन उसी गांव में एक गृहस्थ के द्वार पर टिक गया। सदन भगवान् का भक्त, उसे भोजन की क्या चिंता ? गृहस्थ ने उसकी बड़ी प्रतिष्ठा की। उसने सदन को प्रेम से भोजन कराया, उसे सोने के लिए स्थान दिया। किन्तु सदन का सुगठित शरीर, उसके घुँघुराले बाल और उसकी बड़ी बड़ी आंखों ने गृहस्थ की स्त्री के हृदय में घर कर लिया। वह सदन पर आसक्त होगई। सब लोग खा पीकर सो गए, पर वह

स्त्री अपने हृदय में कुभावना छिपाए हुए रात में बहुत देर तक जागती ही रही।

रात में जब उसे मौक़ा मिला, तब वह सदन के पास गई। उसने सदन के ऊपर अपने प्रेम का जाल फेंक कर कहा—'मुझे तुम अपनी स्त्री बना लो। मैं इसी समय तुम्हारे साथ चलने के लिए तैयार हूँ।' पर भक्त सदन के हृदय पर उसकी बातों का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। उसने हाथ जोड़ कर जवाब दिया—'माता! मुझे क्षमा करो। यदि तुम मुझे चाहती हो तो दया कर अपने चरणों की धूलि मेरे मस्तक पर लगा दो।'

उस स्त्री ने अनेक तरह से सदन को फांसने की चेष्टा की, पर सदन उसके कब्जे में न आया। वह जब जब प्रियतम और प्रेमी के संबोधन से उसे अपने जादू की माया में फसाने की चेष्टा करती, तब तब सदन माता और बहन के संबोधन से उसके प्रेम-जाल को छिन्न भिन्न कर दिया करता। स्त्री परेशान होगई—हार गई। पर सदन का मन न डिगा। सहसा उस स्त्री के मन में एक दूसरी बात आगई। उसने सोचा, कदाचित् यह मेरे पति के डर के कारण मुझे अपने साथ ले चलने के लिए तैयार न होता हो! बस, क्या था, वह तुरन्त हाथ में तलवार लेकर अपने पति के पास जा पहुँची। उसका सिर काट कर, फिर सदन के पास जाकर कहने लगी—'लो, अब तो हमारा तुम्हारा रास्ता साफ होगया। बोलो, अब मुझे अपने साथ ले चलोगे न!!'

उस स्त्री का यह कांड देख कर सदन कांप उठा। उसके लोम लोम में उस स्त्री के प्रति घृणा का भाव जाग उठा। यद्यपि उस कामातुरा स्त्री को इसका पता न था, वह तो किसी तरह से भी भगवान् के सदन को अपना बना लेना चाहती थी। मगर यह कैसे हो सकता था? भगवान् की प्यारी चीज़ को कोई कैसे अपने काम में ला सकता है? स्त्री लाख प्रयत्न करने पर भी हार गई। सदन उसकी बातों में न आया, न आया।

जब उस स्त्री का कोई वश न चला, तब वह छाती पीट पीट कर रोने चिल्लाने लगी। उसका रोना-चिल्लाना सुन कर गांव के आदमी इकट्ठे हो आए। उस स्त्री ने सब के सामने अपनी करुणा-पूर्ण माया फैला दी। जो आया, उसीसे उसने कहा—'इस बने हुए साधु ने मेरे पति की हत्या कर डाली है। यह मेरे पति की हत्या करके मेरे साथ अपनी काम-वासना पूरी करना चाहता था।' उधर सदन की विचित्र ही दशा थी। वह किसी से न कुछ कहता और न सुनता। मानो, उसके लिए यह सब कुछ हो ही नहीं रहा है। वह तो भगवान् के प्रेम में मस्त है! सदन और उस स्त्री की दशा को देख कर लोगों को यह विश्वास हो गया कि हो न हो, यह बगुलाभगत है। अब क्या था? गांव वाले लगे सदन को गालियाँ देने और मारने। मगर सदन फिर भी प्रसन्न, फिर भी वह भगवान् के प्रेम में मस्त! उसको किसी बात की परवाह न थी।

सदन पर अदालत में मुक़दमा चला। सदन ने हाकिम के सामने सच-सच बात कह दी। उसका न तो कोई गवाही था और न कोई साक्षी ? हाकिम को भक्त और सत्यप्रिय सदन की बातों का विश्वास भला कैसे हो जाता ? उसने फ़ैसला सदन के खिलाफ़ किया—सदन को अपराधी क़रार देकर उसने हुक्म दिया इसके दोनों हाथ काट लिए जायँ। सदन के दोनों हाथ काट लिए गए। वह पीड़ा से छटपटाने लगा। किन्तु; उसकी आत्मा में अब भी एक तरह का सुख था, संतोष था। वह सोचता था, यह भगवान् की देन है। भगवान् की दी हुई वस्तु को प्रसन्नता-पूर्वक ही ग्रहण करना चाहिए। सदन का वह हृदय ! सचमुच उसमें भगवान् की कितनी गहरी भक्ति भरी हुई थी।

सदन के दोनों हाथ कटे थे। उसके कटे हुए हाथों से रक्त की धारा सी बह रही थी। अंग-अंग पीड़ा से कांप रहा था। पर सदन इन सब बातों की उपेक्षा करके श्रीजगन्नाथ जी का दर्शन करने के लिए उनकी ओर बढ़ा जारहा था। इस पीड़ा में उसे एक सहारा था, इस व्यथा में उसे एक अवलंब था। वह प्रभु के नाम की रट लगाए हुए था। इसके आगे उसे संसार की कोई वस्तु सूझती ही न थी, इस रट का उसके मन पर ऐसा गहरा नशा छाया था कि वह मार्मिक पीड़ा का अपने दिल में एक मिठास की तरह अनुभव कर रहा था। राम नाम की महिमा, सचमुच बड़ी विचित्र होती है।

भक्त की परीक्षा हो चुकी। वह परीक्षा में खरा उतरा। श्रीजगन्नाथ जी ने स्वप्न में अपने एक पुजारी को आदेश दिया— मेरा, एक सच्चा भक्त आरहा है। उसका नाम सदन कसाई है। उसके दोनों हाथ कटे हैं। उसे शीघ्र मेरे पास आदर-पूर्वक लाओ। पुजारी जी तुरंत पालकी ले कर गए और सदन को ज़बरदस्ती पालकी पर बैठा कर श्रीजगन्नाथ जी के मंदिर में ले गए।

सदन श्री जगन्नाथ जी के सामने हाथ जोड़ कर खड़ा होगया। आंखों में प्रेम के आंसू उमड़ आए। हृदय भक्ति से गद्गद होगया। भक्त की यह हालत देखकर भगवान् ने प्रकट होकर कहा—'सदन! मैं तुम्हारी भक्ति से अत्यंत प्रसन्न हूँ। तुम सोचते होगे कि भगवान् ने इतना प्रेम करने पर भी मुझे यह सज़ा क्यों दी? यह सज़ा, तुम्हारे पूर्व जन्म के कर्मों का फल है सदन! तुम पूर्व जन्म में काशी के एक विद्वान और सदाचारी ब्राह्मण थे। एक दिन कसाई के घेरे से भागी हुई एक गाय रास्ते में दौड़ी जारही थी। तुम भी उसी रास्ते से होकर जारहे थे। कसाई ने तुम्हें पुकार कर कहा—गाय पकड़ लो। तुमने गाय पकड़ कर कसाई के हवाले कर दी। कसाई ने अपने घर ले जाकर उसे मार डाला। तुम्हारे पूर्व जन्म की वह गाय, गृहस्थ की स्त्री थी, और कसाई था उसका पति। तुमने दोनों हाथों से गाय पकड़ी थी, इसलिए इस जन्म में तुम्हारे दोनों हाथ दंड-स्वरूप काट लिए गए। पर अब तुम्हारे पापों का प्रायश्चित्त पूरा होगया।

अब तुम्हें मुक्ति के मार्ग पर स्वच्छंद विचरने से कोई नहीं रोक सकता।'

भगवान् अन्तर्धान होगए। सदन आनंद से गद्‌गद हो उठा। अब उसे क्या चाहिए ? उसकी आँखों ने तो भगवान् का दर्शन किया। वह प्रेमपूर्वक श्री जगन्नाथपुरी में रहकर अपने उन्हीं आराध्य देव का गुणानुवाद करने लगा। कुछ दिनों के बाद वह इस नश्वर संसार को त्याग कर अमर लोक में चला गया। सदन इस समय संसार में नहीं है, पर उसकी कीर्ति इस समय भी भक्त-संसार में ज्यों की त्यों बनी हुई है, इस समय भी लोग उसके नाम को श्रद्धा और भक्तिपूर्वक अपनी जुबान पर लाया करते हैं।

कूबा कुम्हार

कूबा जाति का कुम्हार था तो क्या, उसने अपने प्रेम और ईश्वर भक्ति से संसार में पवित्रता की मंदाकिनी प्रवाहित कर दी थी। ईश्वर-भक्ति और प्रेम के लिए तो जाति-पांति चाहिए नहीं ! जाति-पांति तो संसार का प्रपंच है। जिसने इस असीम जगत की सृष्टि की है, उस मालिक के दरबार में तो जाति-पांति का कोई खाता ही नहीं ! वह तो सब से प्रेम करता है, सबको चाहता है। जो उसकी शरण में गया, उसी की उसने रक्षा की !

केवल दिल में प्रेम और भक्ति होनी चाहिए। प्रेम और भक्ति पर तो वह करतार ऐसा रीझता है कि कुछ कहने की बात नहीं! देखो न, इसी प्रेम और भक्ति ही के नाम पर ग़रीब कूवा ने उसे किस तरह अपना बना लिया था।

कूवा क्षुद्र जाति का मनुष्य था, पर उसका हृदय बड़ा विशाल था। उसके हृदय में रात दिन सत्य और धर्म की लहरें हिलोरें मारा करती थीं। वह बर्त्तन बनाता और उसे बेच कर अपना तथा अपनी स्त्री का निर्वाह किया करता था। उसकी स्त्री का नाम पुरी था। कूबा की तरह पुरी भी बड़ी धर्मशीला और धर्म-परायणा थी। वह भी ईश-भजन में निरंतर कूबा का साथ देती और सच्चे मन से भगवान् के चरणों में अपनी श्रद्धांजलि चढ़ाया करती थी।

दोनों बड़े सुखी थे—संतोषी थे। संतोष की तो कूवा ने सीमा कर दी थी। उसके संतोष की झलक केवल एक इस बात ही से बहुत काफ़ी मिल जाती है कि वह महीने में गिन कर कुल ३० बर्त्तन बनाया करता और इन्हीं पर अपना खर्च चलाता। उसे दुख सुख की परवाह नहीं थी। वह थोड़े ही में बड़ी प्रसन्नता-पूर्वक अपना काम चला लेता था। पर अधिक बर्तन बना कर अपने अमूल्य समय को बर्बाद करना नहीं चाहता था। उसका समय तो, उसके प्यारे भगवान् के लिए था। वह रात दिन उन्हीं के चरणों पर अपने प्रेम का तुलसी दल चढ़ाया करता था।

कूबा ग़रीब था, पर उसका हृदय सहानुभूति से भरा हुआ था। यदि वह कहीं किसी भिखारी को भूख से छटपटाता हुआ देखता तो स्वयं न खाता, और उसे खिला देता। इस काम में उसकी आत्मा को बेहद सुख मिलता—संतोष होता। अतिथि-सेवा का तो वह एक सजीव पुतला सा था। चाहे जितने अतिथि द्वार पर जायँ पर वह उनकी सेवा से विरत न होगा। उन्हें खिलाएगा, उनकी सेवा करेगा। यदि इसके लिये उसके सिर पर विपत्तियाँ आएँगी, तो वह उन्हें भी बर्दाश्त करेगा! क्यों? वह भगवान का भक्त था! भक्त अतिथि सेवा के महत्त्व समझते हैं।

एक दिन कूबा जी के गांव में दो सौ साधुओं का एक दल आ पहुँचा। गाँव में बड़े बड़े सेठ और साहूकार थे। साधुओं ने सबके द्वार पर आवाज़ लगाई। पर किसी ने एक चंगुल आटा तक उनकी झोली में न डाला। जिससे सवाल किया, उसी ने जवाब दिया, भाई यहाँ क्या रक्खा है। कूबा कुम्हार के दरवाज़े पर जाओ, वहाँ तुम लोगों की पूरी प्रतिष्ठा होगी। साधुओं ने कूबा के दरवाज़े पर जाकर सीताराम के नाम की आवाज लगाई। 'सीताराम' का नाम सुनते ही कूबा आनंद से पुलकित हो गया। उसके शरीर के लोम-लोम में एक हर्ष का उन्माद सा नाच उठा। वह घर के भीतर से ऐसा दौड़ कर बाहर आया, मानों सचमुच उसके 'सीताराम' द्वार पर खड़े होकर उसे प्रेम से बुला रहे हों। द्वार पर आकर कूबा ने देखा

दो सौ साधुओं का दल! वह ललक कर उनके चरणों पर गिर पड़ा।

कूवा ने प्रेम के आँसू आँखों में भर कर कहा—कहिये, मैं आप लोगों की कौन सी सेवा कर सकता हूँ। साधुओं के महंत ने कहा, मुझे भोजन चाहिये। घर में अन्न का एक टुकड़ा नहीं, पर कूवा ने मुस्करा कर कह दिया, बैठिये, मेरे अहो भाग्य! मैं अभी आपकी मंडली के भोजन का प्रबंध करता हूँ। कूवा साधुओं को बाहर बैठा कर घर के भीतर गया। पर वहाँ तो हाँड़ियाँ बज रही थीं। फिर वह क्या करे? क्या उसके दरवाज़े से भगवान के दो सौ भक्त बिना भोजन किए हुए लौट जायँ, नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। कूवा अवश्य उनके भोजन का इन्तजाम करेगा, वह अपने जीते-जी कभी उन्हें अपने दरवाज़े से वापस न लौटने देगा।

कूवा ने एक बार अपने प्यारे भगवान् का नाम लिया। फिर वह गाँव के महाजन के पास गया। उसने महाजन से हाथ जोड़ कर कहा—महाजन! मेरे दरवाज़े पर दो सौ भगवान् के भक्त आगए हैं। तुम आज उनके खाने-पीने का प्रबंध कर दो। जिस तरह से कहोगे, मैं तुम्हारा रुपया अदा कर दूँगा। महाजन कूवा को जानता था। उसके पास एक पैसा भी नहीं! कुछ ज़मीन जायदाद भी नहीं। फिर वह कैसे रुपया अदा करेगा। महाजन ने कुछ सोच कर जवाब दिया—मैं इन्तजाम कर

सकता हूँ। पर एक शर्त पर, मुझे एक कुँआ खुदवाना है! यदि तू अपने हाथों से कुँआ खोद दे तो मैं तेरी मांग पूरी कर सकता हूँ!

कूवा के लिए तो यह एक साधारण बात थी। वह तो अपने प्राणों को गवां करके भी साधुओं को भोजन कराना चाहता था। फिर उसे महाजन की यह शर्त मान लेने में आपत्ति ही क्या होती? उसने महाजन की बात मान ली। महाजन ने उसके कथनानुसार दो सौ आदमियों के भोजन का पूरा समान उसके घर भेज दिया। कूवा ने आनंदपूर्वक सामान साधुओं के हवाले कर दिया। साधु मंडली उसे आशीर्वाद देती हुई चली गई। कूवा का हृदय भी आनंद से पुलकित हो उठा। वह अपनी इस सफलता पर इतना आह्लादित हुआ, मानो उसे संसार की संपत्ति मिल गई हो।

दूसरे दिन, सवेरा हुआ और कूवा अपनी स्त्री सहित शर्त के मुताबिक महाजन का कुँआ खोदने में लग गया। कूबा कुँआ खोदता, और उसकी स्त्री मिट्टी निकाल कर बाहर फेंका करती। साथ ही दोनों की ज़बान पर भगवान का नाम रहता। दोनों गहरा परिश्रम करने पर भी बहुत सुखी रहते—बहुत प्रसन्न रहते। उन्हें न परिश्रम जान पड़ता और न थकावट। भगवान् के नाम की मधुर वीणा हमेशा दोनों के अन्तर तल में जीवन का संचार करती रहती थी। ऐसा मालूम होता था, मानों दोनों स्त्री-पुरुष संसार की सीमा से बहुत आगे निकल गये हैं। उन्हें संसार के दुख-सुख

से कोई मतलब ही नहीं ! वे तो भगवान् के भक्त थे ! भगवान् के भक्तों का हृदय तो भक्ति और प्रेम से परिपूर्ण रहता है। उसमें दुख-सुख के लिए स्थान कहाँ ?

कूवा के सतत परिश्रम से कुएँ में जल निकल आया। जल इतना मीठा, मानों अमृत है। जो उसे पीता, उसी का हृदय तृप्त हो जाता। पर इसी समय एक ऐसी दुर्घटना घटी, जिससे लोगों का हृदय कांप उठा। लोग हाय हाय करने लगे। यह कूवा की एक परीक्षा मात्र थी। भगवान् संसार में कूवा के द्वारा अपनी भक्ति का चमत्कार दिखाना चाहते थे। कूवा के अहोभाग्य ! भगवान ने उसे अपनी भक्ति का पात्र बनाया। भगवान की कृपा ही तो है ! जिनके ऊपर वे प्रसन्न हो जायँ।

एक दिन कूवा कूएँ के अन्दर काम कर रहा था। इसी समय ऊपर की मिट्टी खिसकी; और कुँआ बैठ गया। एक ही मिनट में कूवा के सिर पर सैकड़ों मन मिट्टी का बोझ लद पड़ा। बेचारी कूवा की स्त्री, यह कांड देखकर बड़े ज़ोर से चीत्कार उठी। गाँव के लोग इकट्ठा हो आये। सब लगे अपने अपने मन की खिचड़ी पकाने। कोई कहता था, कूवा बना हुआ भक्त था, यदि वह भक्त होता तो अवश्य उसकी भगवान रक्षा करते। कोई कहता, नहीं भाई, यह सब संसार का प्रपंच है। न कहीं भगवान्, न कहीं ईश्वर ! सब अपनी-अपनी बातों में मस्त थे। पर किसी ने कूवा को बाहर निकालने की कोशिश न की। कौन इतनी मिट्टी को बाहर निकलवाये ! कूवा मिट्टी निकालने से बच जायगा तो

नहीं। लोगों ने उसकी स्त्री को समझा-बुझा कर शांत किया। वह बेचारी भी अपने कलेजे पर पत्थर रख कर घर लौट गई। उसके पास और चारा ही क्या था ?

कई वर्ष बीत गए। लोगों को कूबा के नाम का ख्याल तक न रहा, यदि किसी को कूबा की स्मृति दुख देती थी, तो वह थी उसकी स्त्री। बेचारी रात दिन कूबा के वियोग में अपने हृदय के गरम-गरम आँसुओं को आँखों की राह से बहाया करती थी। भगवान् का नाम लेती और अपनी झोपड़ी में पड़ी रहती। करुणा-शील भगवान् भी अपने पुजारियों को कैसे भूल सकते हैं ! उन्हें कूबा और कूबा की स्त्री के दुख-दर्द का भलीभांति पता था। वे सब कुछ जानते थे। पर सब कुछ जान करके भी चुपचाप बैठे हुए थे। शायद समय की प्रतीक्षा में थे।

एक दिन भठे हुए कुएँ की ओर से यात्रियों का एक दल निकला। उस समय सूर्य अस्त हो रहा था। यात्रियों ने गाँव समीप समझ कर वहीं डेरा डाल दिया। जब सब लोग खा पीकर सोए, तब यात्रियों को वहाँ एक अजीब बात सुनाई पड़ी। ज़मीन के भीतर से किसी के गाने, बजाने और नाचने की आवाज़ उनके कानों में पड़ी। सब आश्चर्य-चकित होकर ध्यान से सुनने लगे। सचमुच, हरिकीर्त्तन की आवाज़ आरही थी। मृदंग बज रहा था, करताल की झंकार हृदय को विमुग्ध कर रही थी। सब के सब यात्री आश्चर्यान्वित होगए। सोचने लगे, बात क्या है ? यहाँ कोई आदमी भी तो नहीं है ? फिर क्या आदमी, ज़मीन

के अंदर रहेंगे ? यात्री बहुत कुछ सोचने पर भी कुछ सोच न सकें।

इधर सवेरा हुआ, और उधर यह खबर कूबा के सारे गाँव में फैल गई। झुंड के झुंड स्त्री-पुरुष कुएं के पास दौड़ चले। वहाँ जाकर सुनते हैं तो सचमुच नाचने, गाने और बाजा बजाने की स्पष्ट आवाज़ ! सारे के सारे मनुष्य आश्चर्य-चकित होगए। लगे सब उस स्थान की मिट्टी निकाल कर कुआँ साफ करने। कुछ देर के बाद मिट्टी निकल गई। कुएं का साफ़ जल दिखाई देने लगा। लोगों ने देखा, एक ओर कुएं का पवित्र जल बह रहा है, दूसरी ओर अपनी भुजाओं में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए हुए भगवान् विराजमान हैं। उनकी ज्योति से सारा कुआँ आलोकित है। कूबा भगवान् के सामने बड़ी मस्ती से नाच रहा है। उसके आँखों से प्रेम की धारा बह रही है। यह दृश्य देख कर लोग आश्चर्य से भर गए। लगे सब भगवान् का जय जयकार करने। लोगों की आवाज़ सुन कर भगवान् तो अन्तर्धान होगए। पर उनकी भक्ति और उनके प्रेम ने गाँव के सभी मनुष्यों को पागल बना दिया। सभी ने कूबा को आदर से प्रणाम कर उसके चरणों की धूलि अपने अपने मस्तक पर लगाई। भगवान् की कृपा ही तो !

जब राजा के कानों में यह समाचार पड़ा, तब वह भी दौड़ा हुआ कूबा के पास पहुँचा। उसने भी कूबा को प्रणाम किया, उसकी आदर-पूजा की। कूबा अपने घर आया। उसकी

स्त्री तो उसे पाकर निहाल होगई। इसके बाद कूबा की कीर्त्ति-पताका चारों ओर फहरा उठी। कूबा के द्वार पर मनुष्यों का सागर सा उमड़ा रहने लगा। बड़े-बड़े राजा महाराजा तक इसका दर्शन करने के लिए आने लगे। बड़े-बड़े साधु और ब्राह्मण संन्यासी तक उसके चरणों की धूलि अपने मस्तक पर लगाने लगे। अंत में अनेक क्षुब्ध और दुखी मनुष्यों की आकुल आत्मा को, अपने आशीर्वाद से शीतल कर भगवान् का भक्त कूबा स्वर्ग-लोक को चला गया।

भगवान् विट्ठल चमार बन गए

भक्त के लिए भगवान् क्या नहीं बन जाते? धोबी, चमार, पासी सब कुछ तो बनते हैं! पर क्यों? इन्हीं दीन-दुखियों में भगवान् बसते हैं। दुःख से क्रंदन करती हुई इन्हीं की आत्मा में तो भगवान् निवास करते हैं! फिर यदि उन्होंने अपने किसी भक्त की रक्षा के लिए चमार का रूप धारण कर लिया तो आश्चर्य की बात ही क्या? चमार, कोई बुरा मनुष्य तो नहीं! मनुष्यता उसमें भी है, ब्राह्मण में भी है। भगवान् ने दोनों की सृष्टि की है और सृष्टि की है एक दृष्टि से। फिर भगवान् क्यों दोनों में भेद मानने लगे। उनके लिए तो सब जीव समान हैं। सब मनुष्य एक हैं। सब भगवान् की कला की उत्तम देन हैं। सभी उसको

प्यारे हैं। इसी को प्रमाणित करने के लिए, अपने भक्त दामा जी पन्त की रक्षा करने के लिए शायद भगवान् ने बिट्ठू चमार का रूप धारण किया। देखिए न, भगवान् की इस लीला में कैसा गहरा रहस्य छिपा हुआ है।

बहुत दिनों की बात है। शोवल कुंडा वेदरशाही राज्य में मंगल वेड्या नामक प्रांत का शासनाधिकार श्रीदामा जी पंत के हाथों में था। वह बड़ा भक्त और ईश्वर का प्रेमी था। दिन रात भगवान् के चरणों में अपने हृदय की भक्ति अर्पित किया करता था। दीन-दुखियों का पूरा मददगार था। यदि कहीं किसी को दुःख में देख पाता तो झट उसकी सहायता के लिए दौड़ पड़ता। शत्रु हो या मित्र, सज्जन हो या दुर्जन, पर वह इन बातों की परवाह न करके संकट-ग्रस्त मनुष्यों की सहायता में अवश्य संलग्न होजाता। श्रीदामा ही जी की भाँति, उसकी स्त्री भी बड़ी तपस्विनी और साधु थी। उसके जीवन का व्रत भी दीन दुखियों की सेवा करना और मानव-समाज को सुख पहुँचाना था। दोनों पति-पत्नी सच्चे दिल से मानव-समाज की सेवा करके अपने आराध्य देव को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया करते थे।

उन दिनों सारे महाराष्ट्र प्रान्त में अकाल पड़ा हुआ था। कई वर्षों की लगातार अनावृष्टि ने प्रांत को वीरान और उजाड़ बना दिया था। लोग अन्न के अभाव में अपने प्राणों से हाथ धो रहे थे। चारों ओर हाय हाय मची हुई थी। वृक्षों की छाल और पत्तियाँ भी न बचने पाईं! लोगों ने उनकी भी

रोटियाँ बनाकर अपने अपने पेटों में डाल लीं। ओह! तेरहवीं सदी का वह विकराल दृश्य! जिसने सुना, उसकी आँखों से आँसू गिर पड़े। जिसने देखा, वह हाय-हाय करने लगा। फिर भक्त दामा जी का हृदय क्यों न इस भयानक कांड से विचलित होजाता, क्यों न उसका हृदय मानवी सहानुभूति से तड़प उठता! चारों ओर हाय-हाय देख कर दामा जी की आँखों में आँसू आगए। आत्मा ने ललकार कर कहा—क्यों असमंजस में पड़े हो भाई! खोल न दो, इन तड़पते हुए मनुष्यों के लिए अपने अन्न का भंडार! भक्त दामा जी अपनी आत्मा के आदेश को कैसे ठुकरा सकते थे? उन्होंने अपने ऊपर लगने वाले शाही कर की बिल्कुल परवाह न करके अपने अन्न का भंडार दीन-दुखियों के लिए खोल दिया। दामा जी की इस सहानुभूति से लाखों मनुष्यों की जानें बच गई। यदि उस समय लोगों ने दामा जी को अपना भगवान् ही समझ लिया हो तो आश्चर्य क्या?

किन्तु; दामा जी की भाँति ही सभी में तो करुणा होती नहीं! सभी दीन-दुखियों को व्याकुल देखकर सहानुभूति से काँप उठना नहीं जानते। जब सूबेदार ने, शाह के पास श्री दामा जी की शिकायत में पत्र लिखते हुए यह लिखा कि उसने अपना सारा अन्न-भंडार अपनी प्रजा को लुटा दिया। खज़ाना खाली हो गया है। तब शाह उसे पढ़कर गुस्से से काँप उठा। उसने फौरन अपने सेनापति को हुक्म दिया—सैनिकों की एक टोली

लेकर मंगल बेड़या जाओ और दामा जी को गिरफ्तार कर लाओ।

आज्ञा की देर थी। सेनापति अपने सैनिकों को लेकर मंगल बेड़्या जा पहुँचा। उसने वहाँ चारों ओर से श्रीदामा को घेर लिया। दामा जी उस समय भगवान् की पूजा-अर्चना में लगा था। उसके कानों में सेनापति के आने की खबर पड़ी, वह बिलकुल विचलित न हुआ। एक मिनट में सारा रहस्य उसकी आँखों के सामने प्रकट हो गया। वह जान गया कि सेनापति मेरी गिरफ्तारी का पैग़ाम लेकर आया है। मगर उसे भय क्या? वह तो सर्वशक्तिशाली भगवान् की आराधना में लगा था। इधर देर होते हुए देखकर सेनापति के दिमाग़ का पारा चढ़ गया। उसने ज़ोर-ज़ोर से आवाज़ लगाकर दामा को बुलाना शुरू किया। दामा की स्त्री ने बाहर निकल कर कहा—जब तक उनकी पूजा न खतम हो जायगी, तब तक वे बाहर नहीं निकल सकते। इस पर तो सेनापति और बिगड़ उठा। उसने क्रोध से अपनी भौंहें चढ़ा कर कहा—मैं पूजा-पाठ कुछ नहीं जानता। उन्हें अभी बाहर निकलना होगा, बताओ वे कहाँ हैं?

भगवान् की पुजारिन, श्री दामा की स्त्री, सेनापति की इस कड़वी बात को न सह सकी। उसने सेनापति को झिड़क कर उत्तर दिया—चुप रहो। अधिक बकवाद न करो। बगैर भगवान् की पूजा समाप्त किए हुए वे कदापि बाहर न निकलेंगे। श्रीदामा जी की साध्वी स्त्री का प्रचंड तेज देख कर तो सेनापति का

होश ठिकाने आगया। उसका क्रोध, न जाने कहाँ, काफूर की तरह उड़ गया। उसने कहा—अच्छा मैं द्वार पर बैठ कर उनकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। आप उन्हें मेरे आने की सूचना दे दें।

सेनापति बैठकर प्रतीक्षा करने लगा। जब श्री दामा जी की पूजा समाप्त हुई, तब उन्होंने अपनी स्त्री से कहा—घबड़ाने की कोई आवश्यकता नहीं। मैं यह जानता हूँ कि सेनापति क्यों हमारे पास भेजा गया है। मैंने जो कुछ किया है, वह ग़रीबों के कल्याण के लिए किया है। ग़रीबों के सच्चे बन्धु, मेरे प्रभू, मेरी अवश्य रक्षा करेंगे। श्री दामा जी बाहर निकल कर सेनापति के सामने खड़ा हो गया। सेनापति ने उसके हाथ में बादशाह का आदेश-पत्र रख दिया। दामा जी ने उसे पढ़कर कहा—अच्छी बात, मैं आपके साथ सहर्ष चलने के लिए तैयार हूँ। पर एक बार भीतर जाकर अपनी स्त्री से विदा तो माँग आऊँ।

श्रीदामा जी घर के भीतर गया। उसने अपनी स्त्री से कहा—आज मुझे बादशाह की ओर से ग़रीबों की सेवा का पुरस्कार मिला है। मैंने जो अपना अन्न-भंडार दीन-दुखियों को बांट दिया है। उसके लिए बादशाह ने मेरे पास मेरी गिरफ़्तारी का पैगाम भेजा है। अब मैं सेनापति के हाथों गिरफ्तार होकर बादशाह के क़ैदखाने में जारहा हूँ। तुम यहाँ प्रसन्न मन से भगवान् की पूजा और दीन-दुखियों की सेवा में अपना समय बिताना। श्रीदामा जी की बात सुनकर उसकी स्त्री का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। उसने कहा—भगवान् जो कुछ करते हैं,

सब अच्छा ही करते हैं। नाथ! मुझे दुख है तो केवल इतना ही कि मैं आपके चरणों की सेवा न कर सकूँगी! अपनी स्त्री की ऐसी सहानुभूति और वीरतापूर्ण बात सुन कर श्रीदामा का हृदय आनंद से नाच ही उठा होगा।

घर से बाहर निकलते ही दामा जी के हाथों में बेड़ियां कस दी गईं। पर दामा जी को इसकी तनिक भी परवाह नहीं। वह तो मन ही मन भगवान् के प्रेम का प्याला पी रहा था। रास्ते में पंढरपुर नाम का एक गांव पड़ा। उस गांव में पांडुरंग भगवान् का मन्दिर था। भक्त का हृदय भगवान् के दर्शन के लिये ललच उठा। दामा जी ने सेनापति से कहा—भाई! यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो मैं भगवान् का दर्शन कर लूँ। सेनापति ने आज्ञा दे दी। दामा क़ैदी के रूप में भगवान् के सामने जाकर खड़ा होगया। उसने अपने प्यारे भगवान् से कहा—नाथ! आपकी यही इच्छा थी कि मैं क़ैदी बन कर आपके दर्बार में आऊँ! लीजिये, अब आगया। मुझे दंड दीजिए स्वामी! सचमुच मैंने बड़ा अन्याय किया है। मैंने बादशाह का धन, बिना उसे किसी प्रकार की सूचना दिए हुए, भूखे और ग़रीब मनुष्यों को बांट दिया! मगर नाथ, यदि मैं अन्न न बांटता तो आज क़ैदी के रूप में आप मुझे देख कैसे पाते। दामा भगवान् के चरणों में अपनी श्रद्धांजलि बिखेर रहा था, इसी समय सेनापति ने बाहर से आवाज़ लगाई। दामा अपने प्रभु की प्रार्थना अधूरी छोड़ कर मंदिर से बाहर निकल आया और उसके पीछे-

पीछे अपने हाथों की बेड़ियाँ झनकारता हुआ बादशाह के दर्बार की ओर चला।

बादशाह का दर्बार लगा था। वह अपने शाही तख्त पर बैठकर अपने सेनापति की प्रतीक्षा कर रहा था। दामा की बेअदबी की बात सोच-सोच कर उसका हृदय आग-बबूला होरहा था। सेनापति दामा को गिरफ़ार कर अब तक उसके पास न पहुँच सका। बादशाह क्रोध से पागल हो रहा था। इसी समय एक काला कलूटा आदमी लंगोटी लगाये हुए बादशाह के दर्बार में आ पहुँचा। वह था तो काला, पर उसके अंग-प्रत्यंग से ज्योति बरस रही थी, जिस समय वह दर्बार में पहुँचा, उस समय सारा दर्बार उसकी ज्योति से आलोकित हो उठा। लोग आश्चर्य में पड़ गए। स्वयं बादशाह भी आश्चर्य-चकित होकर उसकी किशोरावस्था से छलकती हुई ज्योति को निहारने लगा। उस आदमी ने बादशाह को विनय-पूर्वक प्रणाम करके कहा—हुजूर ! मैं दामा जी पंत के यहाँ से आरहा हूँ। दामा जी का नाम सुनते ही बादशाह जलकर खाक हो गया। उसने अपनी त्योरियाँ बदलकर कहा—तेरा क्या नाम है ? तू दामा जी के यहाँ से मेरे पास क्यों आया है ?

'मेरा नाम विट्ठू चमार है'—उस आदमी ने जवाब दिया—'मैं श्रीदामा जी के अन्न से पला हुआ हूँ। दामा जी ने अकाल के समय, आपकी बिना आज्ञा के सरकारी भंडार का जो अन्न गरीबों और दुखियों में बांट दिया था, मैं उसीका सब मूल्य

चुकाने आया हूँ। आप दया करके अपना सारा दाम ले लें, और उसकी रसीद मुझे दे दें।' बादशाह आश्चर्य में पड़ गया। वह लगा, बिट्ठू की मनमोहनी मूर्त्ति की ओर निहारने, उस मूर्त्ति का उस पर ऐसा जादू हुआ कि वह थोड़ी देर के लिये अपने समस्त शाही वैभव तक को भूल गया। यदि कुछ उसकी नज़रों के सामने था तो बिट्ठू की शकल। बिट्ठू ने बादशाह को चुप देख कर कहा—हुजूर मुझे देर हो रही है। आप अपना रुपया लेकर मुझे इसकी रसीद दे दें।

बादशाह की निद्रा भंग हुई। उसने खजांची को बुला कर आदेश दिया—'बिट्ठू के रुपये जमा करके, उसे रसीद दे दो। रसीद पर शाही मुहर लगा दो।' फिर उसने बिट्ठू की ओर देखकर प्रेम से कहा—भाई! जाने के पहले मुझसे एक बार मिल लेना। बिट्ठू चमार खजांची के साथ खज़ाने में गया। उसने रुपये की एक छोटी सी थैली खजांची के हाथ में दे दी। खजांची रुपया गिनने लगा। पर आश्चर्य, वह छोटी सी थैली खाली ही नहीं होती थी। खजांची भी बेचारा बहुत हैरान हुआ। उसका भी हृदय बिट्ठू की मनमोहिनी सूरत को देखकर पागल बन गया। उसने बड़ी मुश्किल से रुपया गिनने का काम ख़तम कर, बिट्ठू को रसीद लिख पायी। बिट्ठू हाथ में रसीद लेकर बादशाह के पास गया। बादशाह ने उससे पूछा—क्यों भाई, तुम्हें रसीद मिल गई न! बिट्ठू ने जवाब दिया—हाँ सरकार! मिल गई। अब मुझे जाने की आज्ञा दीजिये।

पर बादशाह विट्ठू को आज्ञा न दे रहा था। वह विट्ठू की मोहक मूर्त्ति पर मन ही मन अपने को लुटा चुका था। वह तो चाहता था कि विट्ठू की यह सलोनी मूर्त्ति सदैव मेरी आँखों के सामने रहे। पर विट्ठू को शाही महलों में रहने के लिये फ़ुरसत कहाँ? वह तो झोपड़ी में निवास करने वाला आदमी, झोपड़ी ही में रहनेवालों को अधिक प्यार करता है। वह बादशाह को सलाम करके वहाँ से चलता बना। उसे वहाँ रोक ही कौन सकता था? बादशाह बेचारा पछताता ही रह गया। उसने अपने मंत्री को बुला कर आदेश दिया—जाओ, दामा जी को आदर-पूर्वक मेरे पास ले आओ। मैंने उसकी गिरफ़्तारी का आदेश-पत्र निकाल कर बड़ी भूल की। इसमें सन्देह नहीं कि वह महात्मा है, साधु है, सज्जन है।

विट्ठू चमार ने दामा की सारी मुसीबत एक मिनट में रफ़ा कर दी, पर दामा को इसका पता ही नहीं। उसके दोनों हाथों में उसी तरह बेड़ियाँ पड़ी थीं। सेनापति मंज़िल पर मंज़िल पार करता हुआ दामा जी को लेकर दर्बार की ओर आरहा था। दामा जी के पास भागवत की एक पोथी थी। नहा-धो लेने के बाद, रोज वह उसी पोथी का प्रेम से पाठ किया करता था। एक दिन रास्ते में जब दामा जी ने पाठ करने के लिए भागवत का पन्ना खोला, तब उसकी आँखें एक कागज़ को देखकर चौंक उठीं। वह कागज़ उसी पन्ने के भीतर रक्खा हुआ था। उसमें लिखा था—'मैंने अन्न-भंडार के संबंध का अपना सारा रुपया

दामा जी से पा लिया।' इसके नीचे बादशाह का दस्तखत था। एक ओर शाही मुहर लगी हुई थी। दामा आश्चर्य में पड़कर सोचने लगा, 'यह रसीद कहाँ से आगई ? किसने मेरा रुपया जमा कर दिया।' दामा यह सोच ही रहा था कि इसी समय बादशाह का आदमी वहाँ आ पहुँचा। उन सबों ने बादशाह का दूसरा आदेश पत्र सेनापति के हाथ में दिया। सेनापति ने उस आदेश-पत्र को पढ़कर दामा जी की बेड़ियाँ खोल दीं। उसने दामा जी के चरणों पर गिरकर उससे अपने अपराध की माफी भी माँगी। बेचारे दामा जी को इस रहस्य का कुछ भी पता न था ! उसे क्या मालूम कि भगवान् ने भक्त की रक्षा के लिए चमार का रूप धारण किया था। दामा जी को सम्मान पूर्वक बादशाह के दर्बार में लेजाया गया।

× × ×

बादशाह की अजीब ही दशा थी। वह बिट्ठू चमार की याद में मतवाला होगया था। उसका खाना-पीना भी छूट गया था। वह रात दिन पागलों की तरह बका करता—प्यारे बिट्ठू तुम कहाँ चले गए ? क्या तुम अपनी मनमोहिनी मूर्त्ति मुझे फिर एक बार न दिखाओगे ? बादशाह की इस दशा से सारे दर्बार में तहलका मच गया था। बिट्ठू की खोज में चारों ओर घुड़-सवार भेजे गए। पर बिट्ठू का कहीं पता न चला। मानो वह इस लोक का आदमी ही नहीं। जब किसी से बिट्ठू का पता न लगा, तब बादशाह स्वयं बिट्ठू की खोज में महल से बाहर निकल पड़ा।

कुछ दूर जाने पर उसकी श्रीदामा जी से भेंट हुई। श्रीदामा को देखते ही वह तुरन्त पागलों की तरह दौड़कर उसके चरणों पर गिर पड़ा और आँखों में हृदय का समुन्दर उंडेल कर कहने लगा—भाई! बता दो, तुम्हारा विट्ठू कहाँ गया? तुम तो विट्ठू का पता अवश्य जानते होगे। वह तो तुम्हारा नौकर है न! ओह, उसकी वह सलोनी मूर्त्ति, क्या मैं फिर एक बार न देख सकूँगा! रहम करो भाई, मेरे ऊपर। मुझे शीघ्र उसका पता बतादो। मैं बिना उसे देखे हुए इस संसार में अब जिन्दा नहीं रह सकता।

बादशाह की बात सुनकर दामा के आश्चर्य की सीमा न रही। वह समझ ही नहीं पाया कि यह रहस्य क्या है? उसने बादशाह से कहा—'श्रीमान्! मैं तो विट्ठू को जानता ही नहीं! उससे तो मेरी कभी जान पहचान भी नहीं है। वह कौन है और कहाँ रहता है।' बादशाह फिर दामा के चरणों पर गिर कर कहने लगा—'अरे भाई अब मुझे न दुख दो। वही विट्ठू चमार से जिससे तुमने जमा करने के लिए रुपए भेजे थे। मैं जानता हूँ कि तुम मुझसे अब बदला चुकाना चाहते हो। नहीं भाई, ऐसा न करो। मुझे अपने विट्ठू चमार का पता अवश्य बता दो।'

अब तो दामा जी की आँखों का पर्दा खुला। वह समझ गया कि कौन विट्ठू है और वह कहाँ रहता है? बस उसकी आँखों से प्रेम के आँसू निकल पड़े। वह भक्ति से गद्गद होकर भगवान् के प्रेम में नाचने लगा। नाचने के साथ ही साथ विट्ठू चमार का

कीर्त्ति-संगीत भी गाने लगा। बादशाह ने दामा का साथ दिया। वह भी बिट्ठू चमार के प्रेम में मतवाला बन कर उसी का गुणानुवाद गाने लगा। आखिर भगवान् इन दोनों पागलों के प्रेम पर प्रसन्न होकर साक्षात् प्रकट हुए। दोनों ने भगवान् का दर्शन कर अपने को धन्य माना। भगवान् की यह करुणामयी लीला सचमुच रहस्य से भरी हुई है। क्या इस रहस्य को एक सिद्धांत समझ कर लोग उसका सम्मान न करेंगे?

परमेष्ठी दर्ज़ी

चार-पाँच सौ वर्ष की बात है। दिल्ली में एक दर्ज़ी रहता था, उसका नाम परमेष्ठी था। उसका शरीर काला और सुडौल था। लोग उसे कुबड़ा के नाम से पुकारा करते थे। पर उसका हृदय बड़ा विशाल था। उसमें अनेक गुण भरे हुए थे। स्वभाव का पूरा रहम-दिल था। न तो कभी किसी को गाली देता, और न किसी की बहू-बेटी को कभी बुरी दृष्टि से देखता। जीवों को सताना, तो उसकी दृष्टि में एक बहुत बड़ा पाप था। सिलाई का काम करके अपना पेट चलाता था। उससे जो कुछ समय बचता उसे भगवान् की आराधना में लगाया करता था।

हृदय के सामने शरीर क्या है? कुछ नहीं। जिसने संसार में हृदय पाया है, जिसने अपने हृदय में प्रेम और भक्ति को स्थान दिया है, उसे शारीरिक सौंदर्य से क्या काम? शारीरिक सौन्दर्य

तो केवल देखने के लिए है, उसका स्वत्त्व तो क्षणिक है, पर हृदय मनुष्य को दुनिया में अमर बना जाता है। लोग, मरने पर भी उसका यशगान करते रहते हैं। आज हम परमेष्ठी दर्जी को क्यों सम्मान-पूर्वक याद कर रहे हैं ? इसलिए कि उसने अमूल्य 'हृदय' पाया था। उसके हृदय में भगवान् की भक्ति और प्रेम की सरिता बहा करती थी। वह दुखियों का दुख देखकर रो उठता, जीवों को कराहता सुनकर काँप उठता। यदि उसमें ये गुण न होते तो आज दिल्ली के उस कुबड़े को कौन सुबह-शाम श्रद्धा से याद करता।

परमेष्ठी कभी झूठ नहीं बोलता था। वह जब संसार के मनुष्यों की ओर देखता, तब उसका हृदय आनन्द से गद्‌गद हो जाता। वह अपने मन में कहने लगता, इन सब में तो भगवान् की झलक दिखाई दे रही है। परमेष्ठी अपनी इसी व्यापक भावना के कारण संसार के जीव मात्र से प्रेम किया करता था। उसके लिए न कोई ऊँच था, और न कोई नीच। वह ऊँच-नीच की सीमा को पार करके बहुत आगे निकल गया था। क्यों न हो, उसके हृदय में भगवान् की भक्ति थी ! भगवान् की भक्ति हृदय को निर्मल और पवित्र कर देती है।

परमेष्ठी का ईश्वर प्रेम ! कुछ न पूछो । बड़ा ही अनूठा था, बड़ा ही अद्‌भुत था। कभी-कभी कपड़ा सीने के समय भी उसकी ऐसी गति होजाती कि लोग देख कर हैरान होजाते। हाथ में सुई और डोरा। पर परमेष्ठी आँखों में प्रेम के आँसू भर

कर भगवान् की स्मृति में मस्त होजाता। उसे ख्याल ही नहीं कि मैं कहा हूँ और क्या कर रहा हूँ। सचमुच इसी अवस्था को तो प्रेम की सच्ची साधना कहते हैं। परमेष्ठी बड़ा भाग्यशाली था, बड़ा पुण्यशाली था। वह इस लोक में रह करके भी, अपने निर्मल हृदय के झरोखे से दूसरे लोक का दर्शन किया करता था।

परमेष्ठी का परिवार बड़ा नहीं, छोटा ही था। उसके परिवार में वह, उसकी स्त्री, उसका एक लड़का और उसकी दो लड़कियाँ थीं। परमेष्ठी की तरह उसकी स्त्री भी बड़ी दयालु और धर्मात्मा थी। वह भी अपने पति ही के समान भगवान् के चरणों की सच्चे दिल से आराधना किया करती थी। माता-पिता के इस गुण की छाप संतानों के हृदय पर भी पड़ चुकी थी। वे सब भी मन ही मन भगवान के प्रेम का प्याला पीकर दिन रात मस्त रहा करते थे। पर परमेष्ठी से इन सब से क्या काम ? उसके परिवार वाले चाहे दुर्जन हों, चाहे सज्जन ! वह तो भगवान् के प्रेम का प्याला पीने में लगा था। जब उसे समय मिलता, तब वह तुरंत भगवान् को प्रेम से याद कर उनके प्रेम में नाचने लगता। जो उसका नृत्य देखता, उसकी आँखों में भी आँसू उमड़ आते। वह भी भगवान् का पुजारी बन कर, भगवान् की आराधना में लग जाता।

परमेष्ठी था तो दर्जी, पर दिल्ली नगर के कोने-कोने में उसका नाम मशहूर हो चला था। बड़े-बड़े राजा और सेठ-साहूकार तक उसके नाम से परिचित थे। ग़रीब और कंगलों की तो कोई

बात ही नहीं। परमेष्ठी तो रात दिन ग़रीब मनुष्यों के साथ रहा ही करता था, वह स्वयं भी ग़रीब था। फिर ग़रीब लोग उसे क्यों न जानें? परमेष्ठी की इस प्रसिद्धि का कारण था, उसकी बारीक सिलाई। वह उस समय कपड़ा सीने में सारी दिल्ली भर में अपना सानी नहीं रखता था। स्वयं बादशाह भी, समय-समय पर परमेष्ठी ही से अपने लिए कपड़े बनवाया करता था। यदि परमेष्ठी चाहता तो सिलाई का काम ज़ोरों से चला कर कुछ ही दिनों में काफी रुपया कमा लेता। पर रुपया और धन की तो उसे परवाह नहीं। वह तो रुपया और धन को नश्वर जगत का एक प्रपंच समझता था। उसका मन तो भगवान् के चरणों में लगा था। भगवान् की दिव्य ज्योति के सामने, उसे संसार की कोई चीज़ रुचती ही नहीं थी।

एक बार दिल्ली के बादशाह को दो तकिए बनवाने की आवश्यकता हुई। बादशाह ने उसके लिये बेशक़ीमती कपड़ा बाज़ार से खरीदवा मंगाया। हीरे, मोती तथा सोने के तार भी उसमें लगवा दिये। हीरा, मोती और सोना के संयोग से कपड़ा चमक उठा। बादशाह उसकी सुन्दरता को देख कर मन में फूला न समाया। उसने परमेष्ठी दर्ज़ी को अपने पास बुलवा कर कहा—ले जाओ, इसके दो तकिए बनाकर ले आओ। यदि तुम्हारी कारीगरी मुझे पसंद आगई तो मैं तुम्हें खुश कर दूँगा।

परमेष्ठी उस बेशक़ीमती कपड़े में लगे हुए हीरे मोती को देख कर एकबार मन में चौंका। शायद उसे यह भय हुआ कि

यदि इनमें से कहीं कुछ गायब हो गया तो ? मगर बादशाह का हुक्म ! उसने उसकी आज्ञा सिर पर धारण कर ली और उसे सलाम कर वह अपने घर लौट गया। घर पहुँच कर वह तकिए की तैयारी में लग गया। उसने दोनों तकियों की खोल तैयार कर के उसमें सुगंधित रुई भर दी। सुगंध से परमेष्ठी का सारा घर सुवासित हो उठा। एक ओर हीरे मोती की चमक, दूसरी ओर उसकी सुगंध ! स्वयं परमेष्ठी भी आपे से बाहर होगया। मन में सोचने लगा—दोनों तकिए कितने अच्छे हैं ! इतने अच्छे हैं कि इन्हें कोई आदमी अपने काम में नहीं ला सकता। इन्हें तो वही अपने काम में ला सकता है, जो संसार का मालिक हो, जो सब शक्तियों का राजा हो। कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसी चीज़ें तो मेरे प्रभु के योग्य हैं !

प्रभु का स्मरण आते ही परमेष्ठी उनके ध्यान में तन्मय होगया। उसे अपने शरीर का भी ध्यान न रहा। उसका मन संसार के प्रपंचों से अलग होकर उस लोक में जा पहुँचा, जहाँ सचमुच भगवान् निवास करते हैं। अपनी इस तन्मयता में परमेष्ठी को एक बड़ा ही अद्भुत दृश्य दिखाई दिया। कुछ दिनों पहले वह श्रीजगन्नाथ जी की रथयात्रा देखने के लिए पुरी गया था। वहाँ उसने अपनी आँखों से देखा था, श्रीजगन्नाथ जी रथ पर बैठे हैं। उनके पीछे कई छोटी-छोटी सवारियाँ चल रही हैं। लोग खुले कंठ से उनका जय जयकार कर रहे हैं। सवारियों के साथ ही साथ घोड़े नाच रहे हैं। एक ओर मधुर

बाजों की ध्वनि हो रही है, दूसरी ओर शंख का कल्याणकारी नाद सुनाई दे रहा है। परमेष्ठी को तन्मयता में पुनः यही दृश्य दिखाई देने लगा। परमेष्ठी उस दृश्य को देख कर मन ही मन आनंदित हो उठा।

संयोग की बात। इसे भगवान् की माया कहें या और कुछ। उस दिन श्रीजगन्नाथ जी की रथ-यात्रा का उत्सव दिन भी था। जिस समय दिल्ली में बैठा हुआ परमेष्ठी भगवान् की आराधना में तन्मय था, ठीक उसी समय श्रीजगन्नाथपुरी में भगवान् की सवारी भी निकल रही थी। इसीसमय श्रीजगन्नाथ पुरी में, भगवान् के नीचे बिछाया हुआ एक कपड़ा फट गया। पुजारी दूसरा कपड़ा लेने के लिए मंदिर की ओर दौड़ा। परमेष्ठी दिल्ली में बैठ कर अपने हृदय की आँखों से यह सब दृश्य देख रहा था। जब भगवान् का कपड़ा फटा, तब परमेष्ठी से न रहा गया। उसने अपनी साधना ही में बादशाह का एक तकिया उठाकर कहा—'भगवन्! लो इसे। यह तुम्हारी ही तो चीज़ है।' भगवान् की माया! उन्होंने तकिया ले ली। तकिया क्षण मात्र में दिल्ली से जगन्नाथपुरी जा पहुँची। फिर भगवान् की सवारी चलने लगी। परमेष्ठी का मन सवारी के साथ साथ चलने लगा। अचानक परमेष्ठी का मन पीछे पड़ गया। भगवान् की सवारी आगे निकल गई। परमेष्ठी की साधना भंग हुई। उसने अपनी आँखें खोल कर देखा तो न भगवान् और न भगवान् की सवारी। न कहीं बाजे की मधुर ध्वनि और न कहीं शंख का निनाद।

परमेष्ठी चिंता में पड़कर सोचने लगा, मैं होश में हूँ या वेहोश। मैं सो रहा हूँ, या जाग रहा हूँ। कहीं मुझे भ्रांति तो नहीं हो रही है। इसीसमय उसकी निगाह तकिए पर पड़ी। दो में से एक गायव। तो क्या सचमुच श्रीजगन्नाथ जी ने मेरी भेंट ग्रहण कर ली, क्या सचमुच मैंने उनका दर्शन किया? परमेष्ठी यह सोच कर आनंद से पागल होगया। उसके रोम-रोम में प्रेम और भक्ति का सागर उमड़ पड़ा।

इधर जब उसे बादशाह का ख्याल आया, तब उसका मन दुःख और शोक से भर गया। वह आह की लंबी सांसें लेकर अपने मन में कहने लगा—ओह! मैंने यह क्या कर डाला? मुझे दूसरे की चीज़, किसी दूसरे को देने का क्या अधिकार था? क्या बादशाह मुझे इसके लिए क्षमा कर सकेगा? नहीं हरगिज़ नहीं। वह मुझे तकिए के लिए कठिन से कठिन सज़ा देगा। मगर सज़ा की क्या परवाह? मैंने तकिया भगवान् की सेवा में अर्पण किया है। वह भगवान के लायक था भी। भगवान् के सामने बादशाह की हस्ती ही कितनी।

परमेष्ठी अपने मन में इन्हीं विचारों में गोता लगा रहा था। कभी उसका मन भय से दुखी होजाता, और कभी उसके मन में आनंद की तरंगें लहराने लगतीं। इसीसमय बादशाह का सिपाही उसके दरवाज़े पर आ पहुँचा। सिपाही ने परमेष्ठी को पुकार कर कहा—बादशाह के तकिए तैयार होगए हैं या नहीं। बादशाह ने कहा है, बहुत जल्द तकिए तैयार करके लाओ।

'तकिए तैयार होगए हैं सिपाही जी!' दर्जी ने उत्तर देते हुए कहा मैं आपके साथ बादशाह के पास चल रहा हूं। एक तकिया उठा लिया और उसे लेकर वह सिपाही के साथ बादशाह के पास गया। उसने एक तकिया बादशाह के सामने रख दिया। उसकी कारीगरी देख कर बादशाह बहुत खुश हुआ। इसीसमय बादशाह को दूसरे तकिए की याद आई। उसने दर्जी की ओर देख कर कहा—दूसरा तकिया कहाँ है, क्या वह अब तक नहीं तैयार हो पाया?

परमेष्ठी के होश उड़ गये। वह बादशाह के चरणों पर गिर पड़ा और गिड़गिड़ा कर कहने लगा—हुजूर! मैंने आपके दोनों तकिए तैयार किये थे। पर उनमें से एक श्रीजगन्नाथ जी ने अपने लिए ले लिया। बादशाह दर्जी की बात सुनकर हंसा और नाराज़ भी हुआ। उसने कहा—परमेष्ठी! तू पागल तो नहीं हो गया है। भला श्रीजगन्नाथ जी तकिए को कैसे ले लेगें? सच-सच बता, दूसरा तकिया क्या हुआ? क्या तू जानता नहीं कि मैं बादशाह हूँ। मेरे नाराज़ होने पर तेरी क्या गति होगी, क्या इसका तुझे ख्याल नहीं। मेरा तकिया ले जाने वाला भला इस संसार में दूसरा कौन है? चालबाजी छोड़ कर सच-सच बता कि मेरा तकिया क्या हुआ।

दर्जी क्या जवाब दे? वह कुछ झूठ तो बोल नहीं रहा था। उसने हाथ जोड़ कर जवाब दिया—हुजूर! मैं बिल्कुल सच कह रहा हूं। आपका दूसरा तकिया, सचमुच श्रीजगन्नाथजी ने

अपने लिये ले लिया है। आप इसके लिये मुझे चाहें जो सज़ा दें। मैं सहने के लिये तैयार हूँ। मैं कभी अपनी जबान से झूठ नहीं बोलता। आप यह सुन कर आश्चर्य न करें कि भगवान् ने तकिया ले लिया। भगवान् मेरे रोम-रोम में निवास करते हैं। उनकी मुझ पर बड़ी कृपा है, बड़ा स्नेह है। मैं जिस चीज़ को उन्हें आदरपूर्वक देता हूँ, वे उसे बड़े प्रेम से ग्रहण करते हैं। आपका तकिया देख कर मेरे मन में यह विचार पैदा हुआ कि यह तो भगवान् के योग्य है। बस, मैंने उसे भगवान् के हवाले कर दिया और भगवान् ने उसे ले लिया। इसमें तनिक भी झूठ नहीं और यदि आप इसे झूठ समझते हों, तो मुझे कड़ी से कड़ी सज़ा दें। मैं अपने प्यारे भगवान् के लिये सब कुछ सहने को तैयार हूँ।

दर्ज़ी की बात सुनकर बादशाह का माथा ठनका। उसने गुस्से से आँखें लाल करके कहा—'नीच! तेरी इतनी हिम्मत बढ़ गई कि तूने मेरा तकिया अपने भगवान् को दे दिया। तू बिल्कुल झूठ बोल रहा है। भगवान् तकिया लेकर क्या करेंगे? तेरी इन बातों के भुलावे में पड़ कर मैं तुझे हर-गिज माफ़ नहीं कर सकता!' दर्ज़ी को डांट कर बादशाह ने सिपाही को बुला कर हुक्म दिया—'इसके हाथों में हथकड़ी, और पैरों में बेड़ियाँ डाल कर इसे अँधेरी कोठरी में ढकेल दो। इसे खाने पीने के लिए भी कुछ मत दो। देखें, इसका भगवान् अब इसकी किस तरह रक्षा करता है!

आज्ञा की देर थी। परमेष्ठी खूनी बंदी की तरह जेल की अंधेरी कोठरी में डाल दिया गया। बाहर से मज़बूत ताला लगा दिया गया। किन्तु; परमेष्ठी को अपनी इस दुरवस्था से बिल्कुल घबड़ाहट न थी। उसका मन प्रसन्न था, उसकी आत्मा संतुष्ट थी। वह जेल की कोठरी में पड़ा हुआ भगवान् के प्रेम का प्याला पी रहा था। उसे न संसार की खबर और न अपनी खबर। यदि खबर थी तो भगवान् की। फिर भगवान् उसे क्यों भूलने लगे? उसने भगवान् के लिए इतनी विपत्ति उठाई, फिर भगवान् कब आनंद से सोने लगे? वे तो भक्तों की रक्षा के लिए, अपना सब कुछ लुटा देने के लिए तैयार रहते हैं! यही भगवान् की बड़ी महिमा है।

आधी रात बीत चुकी थी। लोग निद्रा में खर्राटे मार रहे थे। भगवान् की आंखों में नींद न थीं। नींद कैसे हो, उनका भक्त परमेष्ठी तो उनके नाम की माला जप रहा था। आखिर भगवान् आधी रात के समय परमेष्ठी के पास जा पहुँचे। अंधेरी कोठरी ज्योति से जगमगा उठी। परमेष्ठी को कुछ खबर न थी। वह भूमि पर पड़ा हुआ भगवान् की आराधना में लीन था। भगवान् को उस पर बड़ी दया आई। उन्होंने उसे प्यार से पुकारा—परमेष्ठी!

भगवान् की मधुर वाणी परमेष्ठी के कानों में गूंज उठी। उसका हृदय गद्गद् होगया। उसे भगवान् की इस वाणी में ऐसा मिठास मालूम हुआ कि उसका मन साधना से विरत

होगया। उसने आँखें खोल कर देखा तो कोठरी ज्योति से जगमगा रही थी। भगवान् हाथ में सुदर्शन चक्र फेरते हुए खड़े थे। परमेष्ठी तो अपने प्रभु को देखकर आनंद से नाच उठा। उसकी आँखों में आँसू उमड़ आए। वह फिर भगवान् के ध्यान में तन्मय होगया। भगवान् उसकी इस तन्मयता को देख कर मुस-कुराए। उन्होंने उसके ऊपर हाथ फेर कर कहा—परमेष्ठी! तू चिंता न कर। एकबार मेरे इस सुदर्शन चक्र की ओर देख। इसे रहते हुए कोई मेरे भक्तों का बाल भी बांका नहीं कर सकता।

भगवान् के स्पर्श से परमेष्ठी के सारे बंधन टूट गए। उसका शरीर सोने की भांति दमक उठा। अंग-अंग से ज्योति की किरणें सी फूटने लगीं। इधर भगवान् अपना यह अभिनय समाप्त कर, बादशाह के पास जा पहुँचे। बादशाह सोरहा था। भगवान् ने उसे कड़ी सज़ा दी। सज़ा देकर, वे तो वहीं अन्तर्धान होगए और बादशाह घबड़ा कर पलंग पर उठ बैठा। उसे स्वप्न में ऐसा मालूम हुआ, मानों कोई उसके शरीर को रौंद रहा हो। जब वह जगा, तब सचमुच उसके अंग-प्रत्यंग में भयंकर पीड़ा हो रही थी। उसके शरीर में, आघात के कई निशान भी मिले। बादशाह की बुद्धि, यह दृश्य देख कर चकरा उठी। वह आश्चर्य में पड़ कर सोचने लगा, यह कैसी अद्भुत बात है? कौन मेरे कमरे में आया, और मेरे शरीर को रौंद कर चला गया। बादशाह बहुत कुछ विचार करने पर भी कुछ सोच न सका। उसकी वह रात बड़ी बेचैनी से कटी।

जब सबेरा हुआ तब उसने अपने स्वप्न की कहानी अपने मित्रों को सुनाई। सब लोग, उसे सुनकर आश्चर्य-चकित हो गये। सुबह पहरेदारों ने क़ैदखाने में जाकर देखा तो परमेष्ठी की कोठरी का ताला टूटा हुआ था। परमेष्ठी के हाथ की हथकड़ी और पैर की बेड़ी ज़मीन पर टूटी हुई पड़ी थी। परमेष्ठी का रूप-रंग बदला हुआ था। उसके अंग अंग में सौन्दर्य झलक रहा था। परमेष्ठी हाथ जोड़कर भगवान् की आराधना में मग्न था, उसे कुछ खबर ही न थी। जब लोगों ने शोर मचाया, तब परमेष्ठी की साधना भंग हुई। वह अपने प्रभु को अपने सामने न पाकर बहुत घबड़ाया और पागलों की तरह भगवान् का नाम ले लेकर कहने लगा—प्रभू! तुम कहाँ चले गए? परमेष्ठी से क्या रूठ गए? रूठो न, एकबार फिर दर्शन दो।

जब बादशाह के कानों में यह सब समाचार पड़ा तब तो उसका आश्चर्य और भी अधिक बढ़ गया। उसने परमेष्ठी को आदरपूर्वक अपने पास बुलाया। उसे नाना प्रकार के वस्त्रा-भूषणों से सजाकर उसने उसकी शहर में सवारी निकाली। परमेष्ठी को बहुत सा धन देकर बादशाह ने उससे अपने कसूर की माफी मांगी। समस्त दिल्ली शहर में परमेष्ठी की कीर्त्ति गूंज उठी। जिसको देखिये वही उसका गुणानुवाद करने लगा। जिसको देखिए, वही उसका कीर्त्ति-संकीर्त्तन कर रहा है। परन्तु, भक्त परमेष्ठी को संसार की यह झूठी बड़ाई बिल्कुल अच्छी न

लगी। वह शांति के लिये दिल्ली को छोड़ कर दूसरे स्थान को चल दिया।

उस स्थान में प्रभु का गुणानुवाद करता हुआ परमेष्ठी कहाँ गया ? इसके उत्तर में यदि हम यह कहें कि अमरलोक में, तो कोई बड़ी बात नहीं।

रामदास चमार

संसार में जाति बंधन बड़ी चीज़ नहीं। यदि जातियों का सचमुच कुछ अस्तित्त्व होता तो भगवान रामदास चमार के सामने न प्रकट होते। वह भिल्लिनी के जूठे बेर खाकर अपने को धन्य न मानते ? जो लोग सिर्फ़ जातियों के बंधन को ही बड़ा समझते हैं, वे भगवान् के प्रति अनाचार करते हैं। भगवान् से और जाति सृष्टि से क्या तात्पर्य ? उसकी सृष्टि मनुष्य करता है। इसी नाते वह संसार के प्रत्येक मनुष्य के भीतर निवास करता है। उसके व्यापक नाम की यही पहेली है।

दूर न जाकर अपने इस रामदास चमार ही के चरित्र को पढ़ लीजिये। देखिये क्या यह किसी उच्च चरित्र से कम उज्ज्वल है।

रामदास जाति का चमार था। वह गोदावरी नदी के किनारे बसी हुई कनकावती नगरी का निवासी था। इस समय भी

कनकावती नगरी मौजूद है, या नहीं, यह कौन जाने ? वह हो या न हो, पर उसकी गोद में निवास करनेवाले रामदास चमार का नाम तो इस समय भी भक्त-संसार में चमक रहा है। धन्य है वह कनकावती नगरी, धन्य है उस नगरी की पवित्र भूमि। यदि उसने रामदास को अपनी गोद में आश्रय न दिया होता तो आज रामदास के नाम के साथ ही साथ उसका नाम संसार में कैसे अमर हो जाता ?

रामदास चमार था। चमारों का काम ही क्या ? जूता बनाना, चमड़े का रोज़गार करना। रामदास भी जूता बनाने का काम किया करता था। रामदास की स्त्री का नाम मूली था। दोनों में बड़ा अद्भुत प्रेम था। दोनों एक दूसरे पर जान देने के लिये हमेशा तैयार रहते थे। दोनों बड़े संतोषी थे। दोनों घर में बैठ कर जूता बनाते। जब कई जोड़े जूते, बन जाते तब रामदास बाज़ार जाकर उन्हें बेच आया करता था। यही उसकी आमदनी थी। इसी आमदनी से दोनों अपनी गुजर-बसर करते थे।

रामदास का एक छोटा लड़का भी था। वह अपने माता-पिता का बड़ा भक्त था। क्या मज़ाल कि अपने माँ-बाप की एक बात भी टाल दे। रामदास अपने इस परिवार में बड़े सुख से जीवन बिता रहा था। न उसे कोई चिंता थी, न उसे कोई दुःख था। खाने-पीने से महीने में जो कुछ बच जाता, वह उसे दीन-दुखियों और साधु फकीरों में बांट दिया करता। उसके

हृदय की विशालता तो देखिये ! ऐसी हृदय की विशालता तो बड़े कहलाने वाले आदमियों में भी नहीं दिखाई पड़ती।

रामदास पढ़ा लिखा तो था नहीं, पर उसे भगवान् के नाम का संकीर्त्तन सुनने का बड़ा शौक था। यदि कहीं भगवान् की कथा होने लगती, तो रामदास सब से पहले वहाँ पहुँचता। जब तक कथा न खतम हो जाती, तब तक रामदास वहाँ बैठा रहता। वह कथा के एक-एक शब्द को इस तरह ध्यान से सुनता, मानों उसे सुनकर मन ही मन याद कर रहा हो। इसीतरह वह साधुओं के पास जाकर भगवान् का संकीर्त्तन भी सुना करता था। इस तरह रोज़ सुनने से रामदास को संकीर्त्तन का एक पद याद होगया—'हरि मैं जैसो, तैसो तेरो दियो।' यह पद रामदास को अच्छा लगता था। वह हर समय इसी को गुनगुनाया करता था।

रामदास को जब इस पद का अर्थ समझ में आया, तब वह और भी खुश हुआ। उसने सचमुच अपने को भगवान् ही का समझ लिया। फिर तो उसकी इस पद पर इतनी श्रद्धा बढ़ी कि वह खाना खाने के समय भी इसी की रट लगाया करता। रामदास का अपने ऊपर अधिक प्रेम देख कर भगवान् ने भी अब अपना अभिनय आरंभ किया। भगवान् के इस अभिनय को यदि हम रामदास का सौभाग्य कहें तो आश्चर्य की बात क्या ?

एक दिन एक साहूकार के घर जाकर रात में कुछ चोरों ने चोरी की। चोरी में जहाँ बहुत से बेशक़ीमती माल हाथ आये,

वहाँ सोने के समान चमकता हुआ एक पत्थर का गोल टुकड़ा भी चोरों के हाथ लगा। वास्तव में वह थी, शालिग्राम की मूर्त्ति पर इस मूर्त्ति से चोरों को क्या मतलब ? वे तो उसे पत्थर का टुकड़ा ही समझ रहे थे। एक चोर के पैर में जूता नहीं था। उसने अपने मन में विचार किया कि यदि इस पत्थर के टुकड़े के बदले मुझे एक जोड़ा जूता मिल जाता तो बहुत अच्छा होता। बस, फिर क्या था ? वह उसे लेकर रामदास चमार की दूकान पर जा पहुँचा।

उस समय रामदास तो दूसरी ही मस्ती में झूम रहा था। वह बड़ी लगन से 'हरि मैं जैसो तैसो तेरो' गाता हुआ भगवान् की भक्ति का आनंद ले रहा था। वह मन ही मन सोच रहा था, मैं भगवान् का दास हूँ। भगवान् ने मुझे अपनी शरण में ले लिया है। इसी समय चोर ने उसे पुकार कर कहा—'भाई ! मेरे पास बहुत बढ़िया पत्थर का एक टुकड़ा है। तेरा इससे बहुत काम निकल सकता है। तू इसे लेकर, इसके बदले में मुझे एक जोड़ा जूता दे दे।' रामदास ने समझा कोई ग्राहक है। जूता लेगा, और नक़द दाम देगा। वह भगवान् के ध्यान में इस तरह लीन था कि उसे चोर की बात अच्छी तरह सुनाई भी न पड़ी। उसने अपनी आंखें बन्द किए ही हुए एक जोड़ा जूता चोर के हाथ में रख दिया। चोर ने इसके बदले उसके हाथ पर पत्थर का टुकड़ा रख दिया। रामदास ने समझा, रुपया ही है। उसे अपने पास रख लिया। जब होश में आया, तब देखा तो पत्थर का टुकड़ा

निकला। पत्थर का टुकड़ा सुन्दर था। साफ था, रामदास को उसे पाकर प्रसन्नता ही हुई। उस बेचारे को क्या मालूम कि भगवान् ने मेरे प्रेम पर रीझ कर मेरे घर में अड्डा बना लिया है।

अब तो वह रोज़ उसी पत्थर की मूर्त्ति पर अपना औज़ार तेज़ करने लगा। कभी-कभी वह उस पर चमड़ा भी घिसा करता। जब वह अपना औज़ार साफ़ करने लगता अथवा जब उस टुकड़े पर चमड़ा घिसने लगता, तब वह बड़ी मस्ती के साथ उस पद को अलापा करता। यों तो वह खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते, प्रत्येक समय इस पद की रट लगाए रहता था। उसे इसमें बड़ा आनन्द मिलता। वह जब झूम-झूम कर गाने लगता, तब उसे ऐसा मालूम होता मानों वह स्वर्ग-लोक में विहार कर रहा हो।

एक दिन जब रामदास पत्थर के टुकड़े पर चमड़ा घिसता हुआ, बड़े प्रेम के साथ 'हरि मैं जैसो तैसो तेरो' की टेर लगा रहा था, तब उधर ही से एक ब्राह्मण निकला। ब्राह्मण की निगाह, रामदास के पत्थर के टुकड़े पर पड़ी। उसने देखा तो वह शालि-ग्राम की मूर्त्ति थी। ब्राह्मण उसे देख बड़ा दुखी हुआ। वह खड़ा होकर सोचने लगा, इस चमार की हिम्मत तो देखो। यह शालिग्राम की मूर्त्ति पर चमड़ा घिस रहा है। इसके हाथों से, अवश्य भगवान् का निस्तार करना चाहिए। उसने रामदास के पास जाकर कहा—भाई! यह तुम्हारा पत्थर का टुकड़ा बहुत बढ़िया है। तुम इसे मुझे दे दो। चाहो तो बदले में दस-पाँच रुपया भी ले लो। यदि न दोगे, तो मुझे बड़ा दुख होगा।

रामदास ने ब्राह्मण की बात सुनकर कहा—इससे तो मेरा बहुत काम निकलता है। मगर जब तुम्हारी इस पर इतनी गहरी डाढ़ जमी है, तब ले जाओ। मैं इसके बदले में रुपया लेकर क्या करूँगा ? मुझे रुपया न चाहिए। मैं अपने परिवार के पालन-पोषण के लिए इसी काम से काफ़ी कमा लेता हूँ। मुझे अधिक रुपयों की ज़रूरत नहीं।

रामदास की बात सुन कर ब्राह्मण सन्न होगया। उसे क्या मालूम कि रामदास चमार का हृदय अधिक निर्मल और स्वच्छ है। उसमें लोभ, लालच और तृष्णा के लिए तो स्थान ही नहीं। रामदास ने पत्थर का टुकड़ा ब्राह्मण को दे दिया। ब्राह्मण उसे लेकर अपने घर गया। उसने शालिग्राम की मूर्त्ति को पंचामृत से धोकर उसे सिंहासन पर आदर से स्थान दिया। फिर रोज भगवान की विधि-पूर्वक पूजा करने लगा था। वह रोज मीठे मीठे पकवानों का उन्हें भोग लगाता, और वेदों के मंत्र द्वारा उनका कीर्त्तन किया करता। पर भगवान को यह सब बिल्कुल न रुचता। क्योंकि ब्राह्मण के मन में लोभ, लालच और तृष्णा का भंडार सा भरा था। वह जब भगवान् की पूजा समाप्त कर लेता, तब भगवान् से हाथ जोड़ कर कहता, भगवन्! मुझे संसार में धनी बनाइए। भगवान् ने एक दिन अपने मन में सोचा, एक यह ब्राह्मण है, और एक वह चमार। एक यह मुझसे रुपए के लिए मुझसे प्रार्थना करता है, और एक वह रुपया पाने पर भी उसे छोड़ देता है। वह कितना प्रेमी है, कितना भक्त

है। उसके प्रेम के आगे तो ब्राह्मण की यह पूजा तुच्छ मालूम होती है। इसलिए अब यहां अधिक दिनों तक रहना ठीक नहीं। जो मज़ा रामदास के चमड़ा घिसने में है, वह इस ब्राह्मण पुजारी के पंचामृत छिड़कने में नहीं।

भगवान की इच्छा ही तो है। एक दिन उन्होंने ब्राह्मण को स्वप्न में आदेश दिया—मुझे ले चलो, रामदास चमार के पास। मैं तो प्रेम का भूखा हूँ, पूजा का नहीं। वह मुझसे प्रेम करता है। उसके प्रेम में मुझे जो मज़ा आता है, वह तुम्हारी पूजा में नहीं। ब्राह्मण महाराज भगवान का आदेश सुन कर सन्न होगए। ज्योंही सवेरा हुआ वे तुरंत भगवान् की मूर्ति लेकर रामदास चमार के पास जा पहुँचे। उन्होंने रामदास से कहा—भाई! लो तुम अपनी चीज़। तुम बड़े पुण्यात्मा हो, बड़े धर्मात्मा हो। भगवान् तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हैं। वे तुम्हारे ही घर रहना चाहते हैं। जिसको तुमने पत्थर का टुकड़ा समझ रक्खा था, वह भगवान् की मूर्त्ति है। भगवान ने मुझे आज्ञा दी है कि मैं उन्हें तुम्हारे घर पहुँचा आऊँ। तुम इस मूर्ति की प्रेम से रोज़ पूजा किया करो। भगवान् तुम पर प्रसन्न होकर तुम्हें अपना दर्शन देंगे।

ब्राह्मण की बात सुन कर रामदास बहुत प्रसन्न हुआ। वह भगवान् की मूर्ति छाती से चिपका कर दौड़ कर अपनी स्त्री के पास गया। अपनी स्त्री को उसने इस मूर्ति की सारी कहानी एक ही सांस में सुना डाली। दोनों बहुत प्रसन्न हुए। रामदास

ने झट पवित्र जल से मूर्ति को नहला कर एक चौकी पर रख दिया। मूर्ति के नीचे एक पवित्र आसन भी बिछा दिया। फिर क्या ? फिर तो रोज़ ही भगवान् की मूर्ति के सामने रामदास नाचने लगा। जब वह नाचने लगता, तब उसकी अजीब दशा हो जाती। वह भगवान् के प्रेम में ऐसा तन्मय होजाता कि उसे अपने शरीर का भी ख्याल न रहता। जो उसे उस अवस्था में देखता, वह यह बिना कहे न रहता कि रामदास पागल होगया है।

इस तरह प्रति दिन भगवान के प्रेम में नृत्य करने से रामदास की भक्ति प्रबल होगई। उसका काम धंधा सब कुछ छूट गया। अब वह प्रत्येक क्षण भगवान की आराधना में लगा रहने लगा। कुछ दिनों के बाद रामदास के मन में यह इच्छा पैदा हुई कि मैं भगवान का दर्शन करूँ। बस, फिर क्या ? प्रेम ने वियोग का स्वरूप धारण कर लिया। रामदास का हृदय भगवान के दर्शन के लिए व्याकुल हो उठा। जब देखो, तब रामदास की आँखें भगवान के वियोग में आँसू की धारा बहाया करतीं। रामदास भगवान की मूर्त्ति के सामने कभी रोता, कभी हँसता, कभी नाचने लगता, कभी गाने लगता। उसकी उस समय अजीब दशा थी। वह कभी कभी वियोग की पीड़ा से तड़प कर भगवान के सामने जाकर कहने लगता—प्रभो ! क्या मुझे दर्शन न दोगे। क्या मुझे अपना सांवला शरीर न दिखाओगे ? क्या तुम भी और मनुष्यों की तरह मुझसे घृणा करते हो ? सचमुच मैं

घृणा ही के योग्य हूं। मैं जाति का चमार हूँ न! न वेद जानता हूँ, न शास्त्र। पर इससे क्या? मैं तुमसे प्रेम तो करता हूँ। मैंने सुना है, जो तुम से दिल से प्रेम करता है, उसे तुम अवश्य अपना दर्शन देते हो। फिर मुझे कब अपना दर्शन दोगे? मैं कब तक तुम्हारे वियोग में इसी तरह तड़पा करूँ। मैं जानता हूँ कि तुम बड़े बड़े तपस्वियों को भी जल्दी अपना दर्शन नहीं देते, पर मैं क्या करूँ नाथ! मुझे तुम्हारे दर्शन के बिना रहा नहीं जाता। जिस तरह तुमने मेरे घर आने की कृपा की है, उसी तरह मुझे दर्शन भी दो स्वामी! तुम्हें देख कर मैं कृतार्थ हो जाऊंगा—अपना जन्म धन्य समझने लगूंगा।

रामदास इसी तरह प्रति दिन भगवान की मूर्त्ति के सामने पागलों सा बड़बड़ाया करता। भगवान की प्रति दिन, इस तरह प्रार्थना करने से रामदास का हृदय दर्पण से भी अधिक निर्मल होगया। उसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह और तृष्णा के लिए तनिक भी स्थान न रह गया। भक्त का ऐसा अकपट प्रेम देख कर अब तो भगवान का भी सिंहासन हिला। वे तुरंत ब्राह्मण का रूप धर कर रामदास चमार के घर जा पहुँचे। रामदास भगवान् के प्रेम में मस्त था, ईश्वर की आराधना में लगा था। वह कभी नाचने लगता था, कभी गाने लगता था। कभी रोने लगता था तो कभी हँसने लगता था। ब्राह्मण वेशधारी भगवान, रामदास की इस लीला को देख कर मुस्कुराए। उन्होंने रामदास को पुकार कर कहा—रामदास! तू पागल होगया है क्या? न तो तुझे अपने

घर की फिक्र और न काम-धंधे की चिन्ता। जब देखो, तब पत्थर की इस मूर्त्ति के सामने नाचता रहता है। भला इससे क्या हो सकेगा ?

रामदास की साधना भंग होगई। उसने आँखें खोल कर देखा सामने बूढ़ा ब्राह्मण खड़ा था। रामदास ने ब्राह्मण को आदर से प्रणाम करके कहा, महाराज मैं आपकी बात का क्या जवाब दूं ? मैं सचमुच पागल हूँ। जबतक मुझे भगवान का दर्शन न होगा, मैं इसतरह पागल बना रहूँगा। मुझसे ब्राह्मण महाराज ने कहा था, तुम भगवान की मूर्ति की पूजा करो। भगवान तुम्हें अवश्य दर्शन देंगे। पर अभी तक तो भगवान ने मुझे दर्शन दिया नहीं। मैं क्या करूँ ? क्या भगवान का दर्शन मुझे न होगा ? यदि आप भगवान के दर्शन की कोई तरकीब जानते हों तो मुझे बता दें। मैं तो सिवाय भगवान का नाम लेने के और कुछ जानता नहीं। न वेद जानता हूँ, न शास्त्र। फिर क्या मुझे भगवान अपना दर्शन न देंगे ? फिर मेरी जिन्दगी किस काम की।

रामदास की बात सुनकर ब्राह्मण वेशधारी भगवान ने और भी कड़ाई से रामदास की परीक्षा लेनी शुरू की। उन्होंने कहा—'रामदास ! तू अपनी ज़िद छोड़ दे। भगवान का दर्शन कोई हँसी-खेल नहीं। भगवान बड़े-बड़े तपस्वियों को भी जल्दी अपना दर्शन नहीं देते।' ब्राह्मण की बात सुनकर रामदास रोने लगा। उसकी आँखों से प्रेम के आँसू गिरने लगे। उसने आह की एक लम्बी

सांस लेकर कहा—महाराज ! मैं लाचार हूँ । मैं अपनी ज़िद नहीं छोड़ सकता । छोड़ूँ कैसे, मेरे प्राण तो मानते ही नहीं । भगवान मुझे चाहे अपना दर्शन दें, चाहें न दें, पर वे प्रेम को मुझसे नहीं छीन सकते । वे मुझे प्रेम करने से नहीं रोक सकते । मैं तो इसी तरह जीवन पर्यन्त उनके वियोग में तड़पा करूँगा—उनके प्रेम की सुन्दर रागिनी गाया करूँगा । यह मुझसे मेरे जीते जी नहीं छूट सकती—नहीं अलग हो सकती ।

रामदास के प्रेम की दृढ़ता देखकर अब तो भगवान से न रहा गया । उन्होंने रामदास से कहा—रामदास ! तुम्हारा प्रेम और तुम्हारी भक्ति सचमुच बड़ी अनूठी है । तुमने मुझे अपने वश में कर लिया । ऊँच हो या नीच, छोटा या बड़ा, मैं तो केवल प्रेम का भूखा हूँ । मेरे दरबार में न तो कोई प्रतिबंध है न रोक । मेरे लिए सभी एक समान हैं । यदि तेरी दर्शन करने की इच्छा है तो ले देख मेरा स्वरूप ।

भगवान रामदास के सामने प्रकट होगए । उसका सारा घर भगवान की दिव्य ज्योति से आलोकित हो उठा । रामदास के आनन्द की सीमा न रही । वह भगवान का दर्शन करके कृतार्थ होगया । भगवान उसे आशीर्वाद देकर अन्तर्धान होगए । रामदास पुनः भगवान के दर्शन के लिए व्याकुल हो उठा । मगर दूसरी बार उसकी साध तब पूरी हुई, जब वह अपनी पंचभौतिक काया को छोड़ कर स्वर्ग लोक में गया ।

रामदास इस समय संसार में नहीं है। पर उसकी कीर्त्ति कहानी इस समय भी कानों में गूँज रही है। जो लोग किसी मनुष्य को अछूत समझ कर उसे घृणा का पात्र समझते हैं। उन्हें रामदास चमार की कहानी एक बार अवश्य पढ़नी चाहिए।

रघु मल्लाह

रघु पिपलीचटी गाँव का रहने वाला था। वह जाति का मल्लाह था। मछली मारना उसका काम था। उसके परिवार में वह, उसकी स्त्री और उसकी बूढ़ी मां थी। रघु मछली मार कर अपने इस छोटे से परिवार का पालन-पोषण किया करता था। वह जाल लेकर तालाब में निकल जाता, मछलियों को मारता और बाज़ार में जाकर उन्हें बेच आया करता था यही उसका प्रतिदिन का काम था, यही उसकी जिंदगी का व्यवसाय था। इसी के सहारे उसकी छोटी सी गृहस्थी टिकी हुई थी।

रघु मछली तो मारता था पर उसका मन मछली मारने में लगता न था। उसके जाल में जब मछलियां छटपटाने लगतीं तब वह सोचता, मैं इन्हें क्यों मार रहा हूँ। मेरी ही तरह इनमें भी तो जीव है। अगर मुझे कोई अपने जाल में फंसा ले तो क्या उस समय मुझे पीड़ा न होगी। इन मछलियों को भी, उसी तरह, मेरा पकड़ना दुखदाई हो रहा है। पर फिर भगवान

ने मछलियों को क्यों वनाया ? शायद इसीलिये कि लोग इन्हें मार कर खाया करें। फिर तो मैं कोई ज़ुल्म कर नहीं रहा हूँ। मछली मारना मेरा पेशा है। यदि मैं इसे छोड़ दूँ तो फिर क्या करूँ ?

रघु इसी तरह अपने मन में प्रति दिन आलोचना किया करता। कभी उसका मन तड़पती हुई मछलियों को देख कर दया से भर जाता, और कभी वह कहने लगता, नहीं मैं जो कुछ कर रहा हूँ, ठीक कर रहा हूँ। इसी तरह कुछ दिन वीत गए। अंत में उसका मन सही रास्ते पर आया। उसे अपने इस काम से घृणा होने लगी। इसीसमय रघु ने किसी से नियम-पूर्वक वैराग्य की दीक्षा ले ली। वैराग्य ने उसके हृदय में अपना स्थान वना लिया।

वैराग्य की भावना से रघु का हृदय पवित्र होगया। वह जीव-हिंसा को पाप समझने लगा। उसने किसी अंश में मछली मारने का काम छोड़ भी दिया। मगर पेट की चिंता! अकेला होता तो भूखा भी रह जाता। अपने आश्रित परिवार को वेचारा रघु कैसे भूखा देख सकता था। जव लोग उपवास करने लगते, तव वह फिर जाल उठा कर मछली मारने के लिए निकल जाता! यह थी उसकी वेवसी! इच्छा न रहने पर भी उसे मछली मारने का व्यापार करना ही पड़ता था।

रघु अपनी इस किस्मत पर आँसू वहाया करता था। वह रोकर भगवान से कहता—भगवान! मैं कितना वड़ा पापी हूँ।

क्या मेरा जन्म इसीलिये हुआ है कि मैं संसार के जीवों की हत्या किया करूँ? यदि तुम्हें मुझे यही काम सौंपना था तो तुमने नाहक मुझे संसार में पैदा किया। नाथ! तुम! मुझ पर कृपा करो। मुझसे इस पेशे को छीन कर मुझे कोई दूसरा काम सौंपो। मुझसे तड़पती हुई मछलियों की विकलता नहीं देखी जाती। हाय! मेरे इस पाप का क्या कोई प्रायश्चित हो सकेगा? नहीं, मुझे बिलकुल आशा नहीं। स्वामी, मैं तुम्हारी शरण में हूँ। तुम्हीं मेरी रक्षा करो, तुम्हीं मेरा उद्धार करो।

रघु इसी तरह प्रतिदिन एकांत में भगवान से विनती किया करता। उसकी प्रतिदिन की प्रार्थना का यह फल हुआ कि उसका मन मछली मारने की ओर से बिल्कुल हट गया। वह न तो अब जाल हाथ से छूता और न मछली मारने का नाम लेता। मगर घर का काम कैसे चले? तीन आदमियों को प्रतिदिन भोजन के लिये अन्न कहाँ से मिले? मछली मारने का एक मात्र पेशा! भक्त रघु ने भगवान के प्रेम के नशे में उससे अपना मुँह मोड़ लिया। पहले का संचय किया हुआ घर में कुछ अन्न था। इसलिये कुछ दिनों तक तो कठिनाई न मालूम हुई। मगर इसके बाद तो उपवास पर उपवास होने लगे। माता और स्त्री रघु को इसके लिये फटकारतीं। आखिर भक्त रघु से अपने परिवार की दुर्दशा न देखी गई। भूख की भयंकर ज्वाला ने वैराग्य के बांध को तोड़ दिया। वह जाल उठा कर पुनः तालाब में मछली मारने के लिये चला। उसका मन भीतर ही भीतर

व्यथित हो रहा था। वह भीतर ही भीतर भगवान से कह रहा था—भगवन्! मैं क्या करूँ, एक ओर भयंकर पाप है, दूसरी ओर भूख की भयंकर ज्वाला। यदि मैं अकेला होता तो भूख की इस ज्वाला में ख़ुशी से अपने प्राणों का होम कर देता, पर मुझसे स्त्री और माता का दुःख नहीं देखा जाता। मैंने उन्हीं के दुखों से दुखी होकर फिर मछली मारने का जाल अपने कंधे पर रक्खा है।

रघु मछली मारने का जाल लेकर एक तालाब पर जा पहुँचा। उसने अपने को निर्दोष बता कर जाल पानी में फेंक दिया। कुछ देर के बाद उसके जाल में लाल रंग की एक बड़ी सी मछली पड़ी। रघु ने जाल पानी के बाहर खींच लिया। पानी से बाहर होते ही मछली तड़पने लगी। व्याकुलता से इधर-उधर नाचने लगी। मछली का तड़पना देखकर रघु का दिल भर गया। उसने उसे प्यार से हाथ में ले लिया। मछली को हाथ में लेकर वह कहने लगा—मैंने कितना भयंकर पाप किया। भला मुझे इस जीव को मारने से क्या लाभ? संसार के सभी जीवों में तो भगवान निवास करते हैं। तो क्या इस मछली के अंदर भी मेरे भगवान् मौजूद हैं। तब तो मैं इसे कभी न मारूँगा।

रघु की कल्पना इसी तरह बहुत आगे बढ़ गई। उसे प्रेम और भक्ति के नशे में भगवान ही मछली के रूप में दिखाई देने लगे। वह कहने लगा—सचमुच इस मछली के अंदर मेरे भगवान निवास करते हैं। भगवान ने एक बार मछली का रूप धारण

किया था। रघु यह सोच ही रहा था कि उसका मन भूख से तड़पती हुई माँ और स्त्री के पास जा पहुँचा। अब फिर उसकी भावना बदली। उसने मछली को हाथ में लेकर कहा—तुम चाहे जो हो; भगवान् हो या और कोई पर मैं तो अब तुम्हें बिना मारे न छोड़ूंगा। तुम्हीं ने तो मुझे बनाया है, और मुझे बना कर मछली मारने का काम सौंपा है। फिर मैं तुम्हें कैसे छोड़ दूँ? देखो, मेरी स्त्री और मेरी माँ, दोनों घर पर भूख की ज्वाला से तड़प रही हैं। तुमने उनके खाने का प्रबंध क्यों नहीं किया? यदि तुम प्रबंध कर देते तो आज मुझे यह काम क्यों करना पड़ता? मैं तो इसे बेमन से कर रहा हूँ—लाचार होकर कर रहा हूँ। इसमें मेरा अपराध ही क्या?

इसके बाद रघु का हिंसा-भाव जाग उठा। उसने मछली को हाथ में कसकर दाबा और उसका मुँह फाड़ने लगा। इसी समय उसे एक अद्भुत दृश्य दिखाई पड़ा। उसे मछली के पेट के अन्दर से आवाज़ सुनाई पड़ी—'नारायण! रक्षा कर, नारायण! रक्षा कर।' इस आवाज़ को सुनकर रघु आश्चर्य में पड़ गया। सोचने लगा, मछली के पेट के अन्दर किसने भगवान् का नाम लिया। कहीं इसके पेट के अन्दर सचमुच भगवान् छिपकर तो नहीं बैठे हुए हैं। अच्छा मैं इसे न मारूँगा। रघु की भावना फिर बदल गई, उसके मन पर वैराग्य ने फिर अपना अधिकार जमा लिया। वह मछली को हाथ में लेकर घने जंगल में चला गया। जंगल में एक पर्वत था। पर्वत से

निर्मल जल का एक झरना झर रहा था। झरने के पास जल के कई छोटे-छोटे कुंड थे। रघु ने एक कुंड में मछली छोड़ दी। मछली जल पाकर फिर आनन्द से नाचने लगी। रघु के भी आनन्द की सीमा न रही। उसकी आत्मा को इससे असीम सुख हुआ।

रघु झरने के किनारे हाथ जोड़ कर बैठ गया। उसकी आँखों से प्रेम के आँसू बहने लगे। उसका हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो गया। उसने भगवान् से प्रार्थना की—भगवान मुझे अपना दर्शन दो। मैं तुम्हारा दास हूँ। केवल नारायण का मंत्र सिखा देने ही से तो काम न चलेगा। तुम मुझे अपना दर्शन दो स्वामी! जब तक तुम मुझे दर्शन न दोगे मैं इसी तरह बिना अन्न जल यहाँ बैठा रहूँगा। रघु का मन भगवान् के दर्शन के लिए बेचैन हो उठा। घर पर स्त्री और माँ भूख से छटपटा रही हैं; पर रघु को जैसे उनकी कुछ खबर ही नहीं। वह तो भगवान् के प्रेम में मस्त था। उसे जब अपने ही शरीर का ध्यान न रहा, तब दूसरों का कैसे रहे। कई दिन बीत गए, रघु का पेट पचक कर पीठ से मिल गया। न अन्न न जल। रात दिन भगवान् के ध्यान में संलग्न। तब तो भगवान् भी स्थिर न रह सके। रघु के प्रेम ने आखिर उन्हें अपने पास बुला ही लिया। भगवान् एक ब्राह्मण तपस्वी के वेश में रघु के पास जा पहुँचे। रघु आँखें बंद कर 'नारायण नारायण' की रट लगा रहा है। भगवान् ने उससे कहा—अरे तू इस जंगल में क्यों बैठा हुआ है? क्या तुझे डर नहीं लगता?

रघु की आँखें खुल गईं। उसने तपस्वी को आदर से प्रणाम करके कहा—महाराज! मैं इस जंगल में क्यों बैठा हुआ हूँ, इसे जान कर आप क्या करेंगे ? मैं अपना काम कर रहा हूँ। जाइए आप भी अपना काम कीजिए। रघु की बात सुनकर भगवान् मुस्कुराए। उन्होंने फिर कहा—अरे भाई! मैं तो चला जाऊँ। पर तू एक बार मन में विचार करके तो देख! भला कहीं मछली के पेट के अन्दर भी भगवान् रहते हैं ? भगवान् की इस बात से रघु को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा, इन्होंने *मछली वाली बात कैसे जान ली! कहीं ये भगवान् ही तो नहीं* हैं! रघु ने तपस्वी के चरणों पर गिरकर जवाब दिया—महाराज! *भगवान् तो संसार के सभी जीवों में* रहते हैं। फिर वे मछली के पेट के अन्दर क्यों नहीं रहेंगे ? आप क्यों ऐसी बातें कर रहे हैं ? आप ही तो भगवान् नहीं हैं ? मैं मूर्ख हूँ, नीच हूँ, मतिमंद हूं। मुझे न छलिए नाथ! मैं आपकी खरी परीक्षा में खरा नहीं उतर सकता।

भक्त की भावना देख कर भगवान बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, रघु! मैं तेरी प्रेम-भक्ति पर बहुत प्रसन्न हूं। सचमुच मैं ही मछली के पेट के अंदर से तुम्हें नारायण का मंत्र सिखाया था। क्या तूने मंत्र पर विश्वास कर लिया ? रघु भगवान की बात सुन कर हर्ष से फूला न समाया। उसने भगवान को आदरपूर्वक प्रणाम करके कहा-प्रभु! मैं आपकी बात पर कैसे विश्वास न करूँ ? आप तो मेरे रोम-रोम में बसे हैं। लेकिन

स्वामी, मेरे हृदय में ज्ञान नहीं । आप मुझे दया कर के ज्ञान और भक्ति दीजिए । मैं आपके इस रूप का दर्शन करना नहीं चाहता । मुझे तो आप का अत्यंत सुन्दर और आलोकमय चतुर्भुज रूप चाहिए । जबतक आप मुझे उस रूप में दर्शन न देंगे, मैं इसी तरह अन्न-जल छोड़ कर यहां आपके नाम पर बैठा रहूंगा ।

रघु का अद्भुत प्रेम और उसकी अलौकिक भक्ति ! भगवान अपने भक्त पर प्रसन्न होगए । उन्होंने रघु के सामने अपना दिव्य स्वरूप प्रकट कर दिया । रघु आनंद से परिपूर्ण होगया । उसकी समाकुल आँखें उस रूप-सुधा का पान करके परितृप्त होगईं भगवान ने रघु से कहा, रघु ! मैं तुम पर अत्यंत प्रसन्न हूं । तुम मुझसे जो कुछ मांगना चाहो, मांग लो । रघु ने जवाब दिया क्या माँगू नाथ ! आपको पाकर मैंने सब कुछ पालिया । अब तो कुछ पाना हमारे लिए बाक़ी नहीं रह गया । फिर मैं आपसे क्या माँगू ? आप मुझे दया कर यह आशीर्वाद दें कि मेरा मन आपके चरणों में लगा रहे । मेरी आँखें हमेशा आपकी सलोनी मूर्त्ति का दर्शन किया करें । भगवान रघु पर इतना रीझ गए थे कि उन्हें बिना कुछ दिए हुए संतोष न हुआ । उन्होंने रघु से फिर कहा, मांगो वरदान ! मैं तुम पर अत्यंत प्रसन्न हूं । रघु मन में सोचने लगा । क्या माँगू ? माँगना तो अब कुछ शेष नहीं रह गया । जब भगवान ही मिल गए, तब फिर और क्या माँगू ? बहुत कुछ सोचने विचारने के पश्चात् रघु ने कहा, प्रभु ! मैं

आपसे एक वरदान मांगता हूं। मैं जाति का मल्लाह हूँ। मछली मारना मेरा काम है। पर जीवों की हत्या करते हुए मुझे बड़ी तकलीफ होती है। मैं चाहता हूं, मुझे यह काम कभी न करना पड़े। भगवान ने रघु के सिर पर हाथ फेरकर उसे आशीर्वाद दिया। रघु प्रेम में ऐसा विभोर हुआ कि उसे अपने शरीर का भी ध्यान न रहा। वह बेसुध होकर भगवान के प्रेमलोक में विचरण करने लगा। भगवान उसे उसी दशा में छोड़ कर अदृश्य होगए। जब रघु की प्रेम समाधि भंग हुई, तब वह चारों ओर भगवान का नाम ले ले कर पुकारने लगा! मगर भगवान अब कहाँ? भगवान तो उस स्थान की मिट्टी के अणु-अणु में हो करके भी वहाँ नहीं थे। रघु भगवान के वियोग में पागल हो उठा, अधीर होगया।

रघु भगवान का नाम लेता हुआ अपने घर पहुँचा। गाँव में जब यह खबर फैली, तब सब लोग इकट्ठा होकर रघु की निंदा करने लगे, उसे कोसने लगे, कहने लगे—तू बड़ा भगवान का भक्त बना है। तुझे अपनी माँ और स्त्री को छोड़ कर जाते हुए शर्म भी न आई। यदि गांव के आदमी इन दोनों की मदद न करते, तो ये दोनों अब तक सुरधाम पहुँच गई होतीं। रघु गाँव वालों की बातों का क्या जवाब दे. उसने इसे भगवान की कृपा ही समझा जो गाँव वालों ने उसकी ग़ैरहाजिरी में उसके परिवार की मदद की। रघु ने हरिनाम का महा मंत्र अपनी माता और स्त्री को भी सिखा दिया। अब तो परिवार का परिवार भगवान का भक्त बन गया।

भगवान की महिमा तो देखिए ! अब रघु को मछली मारने की ज़रूरत न पड़ती। गाँव वाले बिना मांगे ही उसके घर अन्न पहुँचा जाते। रघु दिन रात भगवान के प्रेम में लीन रहता। कभी कभी वह प्रेम में बेसुध भी होजाया करता था। रघु जब अपने घर से बाहर निकलता, तब गाँव के दुष्ट लड़के उसे अक्सर सताया करते। कोई उसे गाली देता, कोई उस पर ढेला फेंकता। कोई उसे चिढ़ाता, कोई उसे ढोंगी करार देता। पर रघु ज़रा भी उन लड़कों की बातों की परवाह न करता। वह चुपचाप अपने रास्ते पर चला जाता ! किसी की बातों पर कुछ ध्यान न देता। किसी ने ठीक ही कहा है कि भगवान के भक्तों के हृदय पर मान अपमान का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता।

एक दिन बड़ी अनोखी घटना होगई। यदि हम इस घटना को भगवान की लीला ही कहें तो आश्चर्य क्या ? एक दिन रघु अपने घर की ओर जा रहा था। उसका एक बदमाश लड़के ने पीछा किया। लड़के ने एक कांटेदार डण्डा उठा कर, उससे रघु को मार दिया। रघु कुछ न बोला। उसने पीछे फिर कर लड़के की ओर देखा भी नहीं। लड़के ने फिर प्रहार किया। इसी तरह उसने कई डंडे रघु के शरीर पर मारे। रघु का शरीर खून से लाल हो उठा। पर उसने लड़के की ओर देखा नहीं। उसके मुख से उसके खिलाफ़ एक बात तक न निकली। इसी को कहते हैं, सहिष्णुता। ऐसी सहिष्णुता भगवान के भक्तों में ही होती है।

रघु तो प्रसन्नतापूर्वक अपने घर चला गया। पर भगवान से लड़के की यह बदमाशी न देखी गई। उन्होंने तुरंत वहाँ एक छोटा सा अभिनय कर दिया। भगवान की लीला ही तो ठहरी! लड़का बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ा। उसके प्राण-पखेरू क्षण मात्र में उड़ गए। सारे गाँव में हलचल मच गई। उसके माता-पिता छाती पीट-पीट कर रोने लगे। पर रोने से होता है क्या? देखनेवालों ने कहा, तुम्हारा लड़का बड़ा दुष्ट था। इसने बिना किसी कारण भक्त रघु को चोट पहुँचाई है, उसका शरीर खून से लाल हो उठा है। इसमें संदेह नहीं कि उसी का फल लड़के को मिला है। तुम इसे उठा कर रघु के घर ले जाओ। शायद उसके हृदय में दया का संचार हो जाए। क्योंकि भक्तों का हृदय बहुत कोमल होता है। रघु तुम्हारे दुःख को देखकर अवश्य तुम पर दया करेगा।

क्षण मात्र में रघु के द्वार पर आदमियों की भीड़ लग गई। लड़के के माता पिता रघु के पैरों पर गिर कर कहने लगे—भाई क्षमा करो! मेरा लड़का दुष्ट अवश्य था, पर इसके मरने से मेरा घर सूना हो जायगा, मैं कंगाल बन जाऊँगा। तुम हम गरीबों पर दया कर इसे जिलादो। रघु बेचारा चकित होगया। कुछ देर तक उसकी समझ में बात न आई। जब उसे सब हाल मालूम हुआ, तब उसने कहा—भाई मैंने तुम्हारे लड़के को मौत के पास नहीं पहुँचाया है मेरे दिल में तो यह विचार भी नहीं था कि इसको किसी प्रकार की तकलीफ हो। इसने मुझे जो मारा,

उसे तो मैं अपने कर्मों का फल समझता हूँ। मैंने पूर्व जन्म में कोई बुरा काम किया होगा, इस लड़के के द्वारा मुझे उसकी सज़ा मिली। फिर मैं इस लड़के से क्यों बुरा मानता? क्यों उसे हानि पहुँचाने की कोशिश करता?

उसके माता-पिता कब मानने लगे! उन दोनों ने रघु के सामने विलाप करते हुए कहा—हाय मैं बिना अपने लड़के के इस संसार में ज़िंदा नहीं रह सकता। उन दोनों का दुख देखकर रघु को दया आगई। उसने हाथ जोड़ कर भगवान से कहा—प्रभु! यदि मेरे मन में इस लड़के के खिलाफ़ कोई विचार न पैदा हुआ हो तो यह लड़का ज़िंदा हो जाए। रघु यह कह कर भगवान के प्रेम में नाचने लगा। उसने सब लोगों को भी अपने साथ नाचने के लिये आदेश दिया। सब लड़के चारों ओर घूम-घूम कर नाचने लगे। बीच-बीच में वे उस लड़के का नाम ले लेकर पुकारते भी जाते थे। कुछ देर के बाद लड़का अपने आप उठ बैठा। मानो वह सोया हुआ था। लड़के के माता-पिता लड़के को पाकर बहुत प्रसन्न हुए। सब लोग अपने अपने घर चले गये। रघु फिर भगवान के प्रेम में मग्न हो गया।

इस घटना से रघु की कीर्त्ति चारों ओर फैल गई। वह लोगों की नज़रों में भगवान् का एक सच्चा भक्त समझा जाने लगा। रघु की वाणी में अमोघ शक्ति आगई। वह जो कुछ अपनी जबान से निकालता, वह सत्य ही होता। अब तो रघु के द्वार पर दर्शनार्थी मनुष्यों की भीड़ जमा रहने लगी। रघु इस

प्रपंच से ऊब गया । वह अपना गांव छोड़ कर एक निर्जन स्थान में जा बसा । वहाँ दिन रात भगवान की उपासना में संलग्न रहने लगा ।

एक दिन रघु भगवान के प्रेम में मस्त था । उसे प्रेम की मस्ती में ऐसा मालूम हुआ मानों श्री जगन्नाथ जी उससे कुछ खाने को माँग रहे हैं । फिर क्या ? वह सूखी-सूखी रोटियां थाल में रख कर भगवान से विनय-पूर्वक कहने लगा— भगवन् ! मेरे पास तो यही हैं । आकर भोग लगाओ न ! भगवान की इच्छा ! वे तो प्रेम ही पर रीझते हैं । प्रेम की रूखी-सूखी रोटियां भी उन्हें मीठे पकवान के समान स्वादिष्ट मालूम होती हैं । रघु की पुकार पर भगवान तुरंत उसकी कुटी में पहुँच गए । और थाली के पास बैठ कर लगे मज़े से रोटियां खाने । रघु भगवान की यह लीला देख कर प्रसन्नता से उछल पड़ा । वह ऐसा आनंदित हुआ, ऐसा प्रसन्न हुआ कि उसे अपना भी ध्यान न रहा ।

इसी समय एक और विचित्र बात हुई । जिस समय श्रीजगन्नाथ जी रघु की कुटी में बैठ कर रोटियां खा रहे थे, उसी समय पुरी का राजा श्रीजगन्नाथ जी को उत्तमोत्तम भोग चढ़ाने के लिए मंदिर में गया । मंदिर में एक दर्पण दूर पर रक्खा हुआ है । उसमें श्रीजगन्नाथ जी का प्रतिबिंब पड़ता है । उसी प्रतिबिंब पर पूजा की सामग्री चढ़ाई जातो है । जब पंडा राजा का भोग-पदार्थ लेकर मंदिर में गया, तब उसने देखा तो आइने में

भगवान का प्रतिबिंब ही नहीं। पंडा बहुत विस्मित हुआ। उसने राजा को ख़बर दी। राजा घबड़ाया सा भगवान के मन्दिर में गया। वह हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगा—स्वामी! मुझसे ऐसा कौन अपराध हुआ, जिससे आप मेरे भोग-पदार्थ को नहीं स्वीकार कर रहे हैं। प्रार्थना करते-करते राजा की आँखें मुंद गईं। उसे ऐसा मालूम हुआ, मानों भगवान कह रहे हैं कि मैं इस समय मंदिर में नहीं हूँ। मैं तो पिपलीगाँव के पास के जंगल में, रघु की कुटी में बैठ कर रोटियाँ खा रहा हूँ। वह मुझसे बड़ा प्रेम करता है। वह जबतक मुझे न छोड़ेगा, मैं उसकी कुटी से न जा सकूँगा।

राजा का ध्यान भंग हुआ। वह तुरंत घोड़े पर सवार होकर रघु की कुटी पर पहुँचा। रघु कुटी के भीतर भगवान के प्रेम में मस्त था। उन्हें अपने हाथों से रोटियां खिला रहा था। राजा ने कई बार रघु का नाम लेकर पुकारा, मगर वहाँ सुनता कौन है? अब राजा से न रहा गया। वह कुटी के अंदर चला गया। कुटी के भीतर जाकर उसने जो दृश्य देखा, उससे उसके आश्चर्य की सीमा न रही। उसने देखा—रघु, प्रेम में झूम-झूम कर किसी के मुंह में रोटियों का कौर डाल रहा है। राजा खानेवाले को न देख सका। ठीक ही है भगवान का दर्शन हर एक आदमी को नहीं हुआ करता।

जब भगवान खाकर चले गए, तब रघु रोने लगा, विलाप करने लगा। उसका प्रेम-विलाप सुन कर राजा से न रहा गया।

उसने आगे बढ़ कर, भूमि पर लोटते हुए रघु को अपनी गोद में उठा लिया। रघु राजा की गोद में बेहोश हो गया। राजा ने उसकी अद्भुत भक्ति देख कर मन ही मन उसकी बड़ी प्रशंसा की।

जब रघु का ध्यान भंग हुआ, तब उसने अपने को राजा की गोद में पाया। रघु आश्चर्य-चकित होकर खड़ा होगया और राजा के चरणों में अपना मस्तक झुकाने लगा। राजा ने उसका मस्तक रोक कर स्वयं अपना मस्तक रघु के चरणों पर टिका दिया। राजा ने कहा—रघु! तुम्हारा जीवन धन्य है। तुमने अपने और अपनी भक्ति से भगवान को अपने वश में कर लिया है। तुम अपनी पत्नी सहित श्रीजगन्नाथपुरी में चल कर रहो।

राजा की बात रघु न टाल सका। वह अपनी पत्नी सहित जगन्नाथपुरी में जाकर रहने लगा। राजा ने उसके आराम की सब तरह से व्यवस्था कर दी। किन्तु; रघु को आराम से क्या तात्पर्य ? वह तो भगवान का भक्त था। अन्त में कुछ दिनों के बाद भगवान का गुणानुवाद करता हुआ, रघु अपनी स्त्री सहित स्वर्गलोक में चला गया। श्रीजगन्नाथपुरी में आज भी लोग रघु का नाम बड़ी श्रद्धा से लिया करते हैं।

दासिया बावरी

श्रीजगन्नाथपुरी के समीपस्थ वालिग्राम नाम का एक छोटा सा कसवा है। इसी कसवे में दासिया का जन्म हुआ था। दासिया जाति का भील था। उसके घर में उसकी स्त्री को छोड़कर और कोई नहीं था। उसके घर की दशा खराव थी। वह घर का कंगाल था। जाति का नीच, और घर का कंगाल दासिया, वड़ी कठिनाई से अपना गुजारा कर पाता था। वह कपड़ा वीनने का काम करता था। इस काम से उसे जो थोड़े-वहुत पैसे मिल जाते, उन्हीं के सहारे वह अपनी ज़िन्दगी के दिन पूरे करता था।

दासिया का जन्म नीच के घर में हुआ था, पर उसका हृदय शुद्ध था, निर्मल था। उसे भगवान का संकीर्त्तन वड़ा ही रुचिकर प्रतीत होता था। जहां कहीं संकीर्त्तन होता, दासिया वहाँ अवश्य पहुँच जाता। उसे संकीर्त्तन सुनने में वड़ा आनन्द मिलता था। कभी-कभी इस आनन्द में वह इतना तन्मय होजाता कि उसकी आंखों से आंसू की धारा वह निकलती।

इसी तरह संकीर्तन और भजन सुनते दासिया का मन भगवान के चरणों में रम गया। वह स्वयं भी भगवान की पूजा आराधना करने लगा। उसके मन में यह समा गया कि संसार में भगवान को छोड़कर और सव मिथ्या है। इसलिए भगवान ही में अपने मन को लगाना चाहिए। मन की इस भावना के कारण वह पूरा वैरागी वन गया। उसका मन दुख-सुख की

सीमा से बहुत आगे निकल गया । वह संसार की चिंताओं को छोड़ कर हमेशा भगवान के प्रेम में निमग्न रहने लगा । वह भगवान के प्रेम में झूम कर भगवान से कहता—दीनबन्धु ! तुमने मुझे नीच के घर में क्यों पैदा किया ? मैं मूर्ख हूँ, अधम हूँ, फिर आपकी विमल भक्ति मेरे हृदय में कैसे अपना स्थान बना सकेगी ? कहाँ आपकी भक्ति और कहाँ मेरा नीच हृदय ! उस बेचारे को क्या मालूम था कि भगवान के दरबार में ऊँच-नीच का भेद नहीं होता ।

श्री जगन्नाथ जी की रथयात्रा के उत्सव का दिन था । झुंड के झुंड नर नारी भगवान का दर्शन करने के लिये जा रहे थे । भक्त दासिया का भी मन ललच उठा । वह अपने को धिक्कारने लगा कि मैं भगवान का पड़ोसी होने पर भी अब तक कभी उनका दर्शन न कर सका । दासिया अब एक क्षण के लिये भी न रुक सका । वह श्रीजगन्नाथपुरी की ओर चल पड़ा । वहाँ जाकर उसने जो दृश्य देखा, उससे उसकी आत्मा को बड़ा आनंद मिला । उसने देखा, कोई भगवान के प्रेम में नाच रहा है, कोई बाजा बजा रहा है । कोई गा रहा है, कोई हरि नाम की आवाज़ लगा रहा है । दासिया से न रहा गया वह इन मनुष्यों के दल में मिल कर प्रेम से हरिनाम की रट लगाने लगा । वह भगवान के प्रेम में ऐसा डूबा कि उसे अपने तन बदन की सुध न रही । उसने अपनी उसी ध्यानावस्था में देखा, भगवान हाथ में शंख, चक्र, गदा और पद्म लिए हुये मुस्कराते

हैं। तथा हँसते हुए करुणापूर्ण दृष्टि से उसकी ओर निहार रहे हैं।

दासिया से न रहा गया। वह प्रेमोन्माद में कहने लगा—नाथ! मैं नीच हूँ, मैं पतित हूँ। मैंने सुना है तुम पतितों का उद्धार करते हो, नीचों का बेड़ापार करते हो। तो क्या मेरा उद्धार न करोगे? मेरा बेड़ा पार न लगाओगे! नाथ! मैंने अभी तुम्हारा दर्शन किया है। तुम्हारा दर्शन करने पर भी क्या मैं पतित हूं? चाहे मैं पतित ही क्यों न होऊँ, पर प्रभु! मैं तुम्हारी शरण में आना चाहता हूं। कृपा कर मुझे अपनी शरण में लेलो। मैं नीच हूँ, तुम्हारी सेवा करूँगा। तुम्हारे चरणों की धूलि अपने मस्तक पर लगाऊँगा। दासिया ज़मीन पर लोट कर भगवान् को अपनी करुण-कहानी सुनाने लगा। जिसने उसको इस रूप में देखा, उसीने उसका दिमाग़ खराब बतलाया। सचमुच दासिया का दिमाग सांसारिक जीवों की दृष्टि में खराब हो गया था। उन्हें क्या पता था कि दासिया इसी दिमाग़ की खराबी से किसी दिन अमरलोक में विहार करेगा।

रथयात्रा का उत्सव समाप्त हुआ। दासिया अपने घर पहुँचा। उसकी स्त्री उसका रास्ता देख रही थी। जिस समय वह घर पहुँचा, उस समय वह भोजन तैयार कर चुकी थी। उसने पति का सम्मान करके कहा—चलो भोजन कर लो। अच्छे समय से पहुँचे। दासिया भगवान के प्रेम में विभोर भोजन करने के लिए बैठ गया।

उस दिन दासिया की स्त्री ने एक नई हांड़ी में भात बनाया था। हांड़ी के ऊपर, चावलों का उफ़ान आने के कारण सफ़ेद फेन चिपके हुए थे। दासिया की स्त्री ने हांड़ी में भात पर तरकारी रख कर हांड़ी दासिया के सामने सरका दी। भगवान का प्रेमी दासिया! उस हांड़ी में भी भगवान के दर्शन करने लगा। वह सफ़ेद भात के ऊपर काली तरकारी देख कर कहने लगा—अरे! इस हांड़ी में तो भगवान के कमल रूपी दोनों नेत्र दिखाई दे रहे हैं। अहा, कैसे सुन्दर नेत्र हैं। नेत्रों के बीच में कैसी मनमोहिनी काली पुतली नाच रही हैं। प्रभु क्या तुम इस हांड़ी में हो? फिर बोलते क्यों नहीं? अच्छा मैं समझ गया। मेरा जन्म नीच कुल में हुआ है न! इसीसे शायद तुम भी मुझसे घृणा कर रहे हो। पर नहीं नाथ, तुम तो घृणा न करो। मैं तुम्हें इस हांड़ी में देख रहा हूँ। तुम्हारे दोनों नेत्र मुझे साफ़-साफ़ दिखाई दे रहे हैं। तुम यह न समझो, मैं तुम्हें नहीं देख रहा हूँ।

भक्त दासिया रोने लगा। उसकी आंखों से आंसुओं की धारा बह चली। दासिया की स्त्री यह दृश्य देख कर हका-बक्का रह गई। वह छाती पीटती हुई घर के बाहर निकल आई और चिल्ला चिल्ला कर कहने लगी—अरे भाई! दौड़ो, मेरे पति को न जाने क्या होगया है। वह श्रीजगन्नाथ जी का दर्शन करने के लिए गया था। जान पड़ता है उस पर किसी ने जादू-टोना कर दिया। दासिया की स्त्री की चिल्लाहट सुनकर गांव वाले इकट्ठे हो आए। लोगों ने देखा तो सचमुच वह पागलों की तरह

बकभक रहा था। लोगों ने दासिया को पुकार कर कहा—दासिया! क्या तू पागल होगया है। सामने भोजन रक्खा हुआ है, तू इसे क्यों नहीं खाता? तेरी स्त्री तेरी यह दशा देख कर बहुत डर रही है।

दासिया को कुछ चेत हुआ। उसने हांड़ी की ओर नज़र डाली। नज़र डालते ही फिर उसका मन भक्ति के आवेग में नाचने लगा। उसे फिर उसमें भगवान के नेत्र दिखाई देने लगे। उसने लोगों से कहा—भाइयो, इसमें श्रीजगन्नाथ जी के रतनारे नैन हैं? क्या तुम लोग उन्हें नहीं देख रहे हो? भला सोचो तो ज़रा, मैं इसे कैसे खाऊँ?

लोगों से इसप्रकार की बातें करते करते दासिया उठ कर खड़ा होगया। वह पागल होकर हरिप्रेम में नाचने लगा। गाँववालों ने समझा, सचमुच यह पागल होगया है सत्य ही इस पर किसी ने जादू-टोना कर दिया है।

दासिया के दरवाज़े पर बहुत से मनुष्य इकट्ठा थे। दासिया किसी की परवाह न करके भगवान के प्रेम में नाचने में मस्त था। इसीसमय श्रीजगन्नाथपुरी से लौटी हुई साधुओं की एक जमात भी वहाँ आ पहुँची। साधुओं ने जब दासिया की यह दशा देखी और उसकी बातें सुनीं तो उनकी आँखों में आँसू भर आए। साधुओं के महंत ने कहा—दासिया! तू बड़ा भाग्यशाली है। धन्य है इस वालिग्राम को, जिसकी गोद में तुझ ऐसा भगवान का सच्चा प्रेमी निवास करता है। तेरे नाम के साथ ही

साथ इस गाँव का नाम भी अमर हो जायगा। इसलिए आज से दासिया की जगह लोग तुझे बालीग्राम दास के नाम से पुकारेंगे। महंत ने दासिया की स्त्री से कहा—माता! घबड़ाने की आवश्यकता नहीं। तेरे सौभाग्य से तुझे दासिया ऐसा पति मिला। अब तू भात और तरकारी अलग-अलग करके इसे रख।

साधुओं की जमात तो वहां से चली गई। दसिया की स्त्री ने महंत के कथनानुसार भात और तरकारी अलग अलग रख दिया अब दासिया की भी प्रेम-समाधि टूट गई। वह बैठ कर मज़े में भोजन करने लगा।

दासिया की काया ही पलट गई। वह रात दिन भगवान के प्रेम में मस्त रहने लगा। खाते पीते, उठते बैठते, सोते जागते, हर समय उसकी ज़बान पर भगवान का नाम रहा करता था। एक दिन रात में दासिया सोया हुआ था। अचानक उसका मन भगवान के चतुर्भुज रूप पर जा पहुँचा। बस, वह उन्मत्त होकर चारपाई पर उठ बैठा और कहने लगा—भगवान! क्या तुम मुझे अपने चतुभुज रूप का दर्शन न दोगे? दासिया के हृदय में यही प्रश्न बार बार उठने लगा। वह भगवान के प्रेम में मतवाला हो गया। उसे भगवान का वियोग अब असह्य होगया। उसकी नस-नस में वियोग की आग लग गई। वह रह रह कर भगवान को पुकारने लगा। आखिर भगवान का हृदय दासिया के प्रेम पर रीझ गया। वे दौड़ कर तुरंत उसके पास पहुँचे। दासिया तो आँखें बंद कर अपने प्रभु के प्रेम में पागल

हो रहा था। उसे क्या मालूम आने आया, ... गया ? मगर जब दासिया की आँखें सहसा प्रकाश से च... ठीं, तब उसने आँखें खोल दीं। देखा तो सामने भगवान ... वान के अधरों पर उस समय विचित्र मुस्कुराहट थी। द... भगवान् की उस सलोनी मूर्त्ति को देख कर आनंद में ... होगया। वह बोला—प्रभो! मैं नीच हूँ आपका मैं कैसे स... करूं ? न तो मैं भक्ति जानता हूं और न प्रेम। मुझे यदि ... मालूम है तो आपका नाम। मैं रात दिन आपके ... माला जपा करता हूं।

दासिया की बात सुनकर भ... कहा—दासिया! मेरे लिए ऊँच-नीच सभी बराबर ... एक दृष्टि से देखता हूँ। जो मुझसे प्रेम करता है, चाहे वह ...सारिक मनुष्यों के लिये चांडाल ही क्यों न हो, मगर मैं उसके घर दौड़ा जाता हूँ। वह मुझे जो कुछ देता है, मैं उसे आदरपूर्वक ग्रहण करता हूँ। तेरा प्रेम अद्भुत है दासिया, तेरी भक्ति सराहनीय है। मैं तुझ पर अत्यंत प्रसन्न हूँ। तू मुझसे जो कुछ मांगना चाहता हो, मांग ले।

दासिया क्या मांगे ? उसके जीवन की निधि तो भगवान हैं। जब उसने अपने भगवान को पालिया, तब फिर वह और क्या मांगे ? उसे धन तो चाहिये नहीं, राज तो चाहिये नहीं। वह तो चाहता है भगवान की भक्ति, वह तो चाहता है भगवान का प्रेम। प्रेम और भक्ति ही में उसके हृदय को संतोष मिलता है, उसकी

आत्मा को आनंद मिलता है। उसने कुछ देर तक सोच विचार करके कहा—प्रभो; यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे यह आशीर्वाद दीजिये कि मेरा मन आपके चरणों में सदा लगा रहे। मैं जब चाहूँ तब मुझे आपके इस दिव्य रूप का दर्शन हो।

दासिया की बात सुन कर भगवान मुस्कुराए। उन्होंने कहा—दासिया! तेरे निर्लोभ प्रेम की मैं कहाँ तक सराहना करूँ? ऐसा विमल प्रेम तो आज तक मुझसे कोई नहीं कर सका था। मैं तेरे इस प्रेम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। मैं तुझसे एक बात कह रहा हूँ। तू इसे ध्यान से सुन। जब तू जगन्नाथपुरी में आयेगा, तब मैं नील चक्र पर बैठ जाऊँगा उस समय तू मुझे जो कुछ देगा, मैं उसे प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करूँगा। तू जिस रूप में चाहेगा उस रूप में तुझे मेरा दर्शन होगा। भगवान भक्त को आशीर्वाद देकर चले गये। दासिया पुनः भगवान के प्रेम में पागल होकर छटपटाने लगा।

रात बीती, सवेरा हुआ। दासिया ने विचार किया, जब भगवान मेरे हाथ की चीज़ खाएँगे, तब तो उन्हें अवश्य भोग लगाना चाहिये। दासिया ने कुछ कपड़ा बुन रक्खा था। वह उसी को बेंचने के लिये निकल पड़ा। फेरी लगाता हुआ एक ब्राह्मण के दरवाज़े पर पहुँचा। ब्राह्मण ने मोल भाव करके खरीद लिया। ब्राह्मण कपड़ा लेकर रुपया लेने के लिये अपने मकान के भीतर गया। दासिया दरवाज़े पर खड़ा होकर उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। इसी समय दासिया की निगाह एक नारियल के पेड़ पर

पड़ी। नारियल में फल लगा हुआ था। वह उसका पहला ही फल था। पेड़ ब्राह्मण का था। दासिया अपने मन में सोचने लगा, यदि यह नारियल भगवान के भोग के लिए मिल जाय, तब तो बहुत अच्छा हो। जब ब्राह्मण पैसा लेकर घर से बाहर आया, तब दासिया ने उससे कहा—भाई नारियल का यह फल तुम मुझे दे दो, इसके बदले में जितने पैसे चाहो, मेरे पैसों में काट लो। ब्राह्मण पहले तो नारियल का फल देने में हिचकिचाया, मगर दासिया की अधिक श्रद्धा देखकर उसने कहा—अच्छा बताओ, तुम मुझे इस फल के कितने पैसे दोगे? दासिया ने कहा—मेरे पैसे तुम्हारे हाथ ही में हैं, जितना चाहो ले लो। ब्राह्मण ने सोचा, अच्छा अवसर हाथ लगा। नारियल का एक फल दे देने ही में इतने कपड़े मिल जाते हैं। उसने जवाब दिया—यदि तुम अपने कपड़े के बदले मुझसे एक भी पैसा न लो, तो मैं तुम्हें नारियल का फल दे सकता हूँ।

दासिया भगवान के प्रेम में मस्त था। उसे रुपए-पैसे की क्या चिंता। उसने प्रसन्नतापूर्वक कह दिया—मुझे मंजूर है। ब्राह्मण ने नारियल का फल तोड़ कर दासिया को दे दिया। दासिया उसे लेकर श्रीजगन्नाथपुरी की ओर चल पड़ा। न उसे घर की फिकर न परिवार की चिंता। कुछ दूर जाने पर दासिया को एक ब्राह्मण मिला। ब्राह्मण पूजा की कुछ सामग्री लेकर, उसे भगवान के चरणों में अर्पित करने के लिए जा रहा था। दासिया ने पुजारी ब्राह्मण को पुकार कर विनीत भाव से कहा—महाराज!

मेरी आपसे एक प्रार्थना है—श्री जगन्नाथ जी के मंदिर में जब आप अपनी पूजा खतम कर लें, तब मेरा यह नारियल हाथ में लेकर गरुड़ स्तम्भ के पास चले जायँ और वहां खड़े होकर भगवान से कहें कि, प्रभो! वालीग्राम के दासिया ने आपके लिए यह नारियल भेजा है, आप कृपा कर इसे हाथ बढ़ा कर ले लें। यदि भगवान हाथ बढ़ाकर नारियल ले लें तब तो ठीक है, और यदि न लें तो मेरा नारियल मुझे फिर वापस कर दीजिएगा।

दासिया ने ब्राह्मण को नारियल दे दिया। ब्राह्मण को दासिया की बात पर आश्चर्य हुआ। मगर भगवान की अनोखी लीला का ध्यान करके उसने चुपचाप नारियल ले लिया। दासिया अपने घर लौट गया। ब्राह्मण ने भगवान के मंदिर में जाकर उनकी पूजा की, उन्हें अपना नैवेद्य चढ़ाया। जब वह अपने घर लौटने लगा। तब उसे दासिया के नारियल की सुध आई। वह उसे लेकर गरुड़ स्तम्भ के पास गया। और नारियल हाथ में लेकर कहने लगा—प्रभो! वालीग्राम के रहने वाले दासिया ने आपके लिए यह भेंट भेजी है। उसने कहा है यदि भगवान हाथ बढ़ा कर इसे ग्रहण करें तब तो ठीक है, नहीं तो मेरा नारियल मुझे वापस कर देना। भगवान की अद्भुत लीला! ब्राह्मण की बात खतम भी न होने पाई थी कि भगवान ने हाथ बढ़ा कर नारियल ले लिया। ब्राह्मण आनंद में मग्न होगया। उसकी आँखों से प्रेम के आँसू निकल पड़े। वह भक्ति में गद्गद होकर कहने लगा—दासिया तू धन्य है। तूने

अपने प्रेम और अपनी भक्ति-विश्वास से त्रिभुवन-पति को भी अपने वश में कर लिया है। थोड़ी ही देर में यह ख़बर समस्त पुरी में फैल गई। सब मुक्त कंठ से दासिया के प्रेम और भक्ति की सराहना करने लगे। सराहना करने की बात ही थी! दासिया की भेजी हुई भेंट को भगवान ने अपने हाथों से ग्रहण किया ऐसा सौभाग्य, ऐसा पुण्य अवसर कब किसे मिल सकता है।

जब दासिया को यह बात मालूम हुई तब तो उसके आनंद की सीमा न रही। वह सोचने लगा, जब भगवान ने दूसरे के हाथ से मेरी चीज़ ली, तब मैं ही क्यों न वहां चल कर अपने हाथों से उन्हें भोग लगाऊं? उन्होंने नीलचक्र पर बैठ कर मुझे दर्शन देने के लिए कहा भी है। दासिया यह सोच कर श्रीजगन्नाथपुरी जाने के लिए तैयार हो उठा। उसने भगवान के भोग के लिए दो टोकरा आम खरीदे। आम पके, मीठे और देखने में अत्यंत सुंदर थे। दासिया दोनों टोकरों की कांवर बना, कंधे पर रख कर पुरी की ओर चल पड़ा। जब वह पुरी पहुँचा, तो उसे देख कर पंडे चारों ओर से दौड़ पड़े। दासिया को आम बेंचने वाला समझ कर सब कहने लगे—भाई! तू इन आमों का क्या दाम लेगा?

दासिया ने कहा—मैं आम बेचनेवाला नहीं। ये आम तो भगवान के लिए हैं। उन्हीं के लिए इन आमों को ले आया हूँ। पंडों ने जवाब दिया—तब तो और भी अच्छी बात है। जब भगवान के लिए लाए हो, तब आम हम लोगों को दे दो। हम

लोगों को दे देने ही से भगवान आम पा जायँगे। दासिया ने कहा—नहीं भाई, हम ऐसा न करेंगे। हम तो अपने हाथों से भगवान को भोग लगाएंगे। दासिया की बात सुन कर पंडे बिगड़ उठे। कहने लगे—देखें, तो किस तरह मंदिर में जाता है। पंडों को क्या मालूम था कि भगवान दासिया के प्रेम पर रीझे हुए हैं।

पंडों की बात सुन कर दासिया बड़ा दुखी हुआ। वह मंदिर के भीतर जाने के लिए पंडों से प्रार्थना करने लगा। बहुत देर की प्रार्थना के बाद, किसी क़दर पंडे राज़ी हुए। दासिया आमों के टोकरे लेकर नीलचक्र के पास जाकर खड़ा होगया। उसने देखा, भगवान नीलचक्र पर विराजमान हैं। दासिया की आँखों में प्रेम के आँसू भर आए। उसका हृदय भक्ति के आनंद से नाच उठा। उसने टोकरों में से एक एक आम निकाल कर भगवान के सामने रख दिया। देखते ही देखते दोनों टोकरे आम से खाली होगये। सब आम ग़ायब होगए। दासिया हाथ जोड़ कर भगवान की भक्ति में तन्मय होगया। पंडों के आश्चर्य की सीमा न रही। पंडों ने दासिया से पूछा—आम क्या हुए? दासिया ने उत्तर दिया—भगवान खागये। पंडों ने समझा यह आदमी पागल है। किसी किसी ने उसको जादूगर भी बताया। मगर जब पुजारी ने जाकर मन्दिर में देखा, तब सचमुच भगवान की रत्नवेदी पर आम के छिलके और आम की गुठलियाँ पड़ी हुई थीं। लोगों के आश्चर्य की सीमा न रही। सब दौड़

कर दासिया के पास पहुँचे और उसके चरणों पर गिर कर कहने लगे—आपका जीवन धन्य है। आपने त्रिभुवन-पति को भी अपने वश में कर लिया है। दासिया पंडों की इस बात का क्या जवाब दे ? वह तो प्रेम में मग्न था।

इसी तरह भगवान की भक्ति और प्रेम से अभिनय करने के बाद एक दिन दासिया भगवान ही के दिव्य लोक में चला गया। दासिया इस संसार से चला गया, पर संसार की छाती पर सदैव के लिये यह अमर कहानी लिख गया कि संसार में कोई मनुष्य अछूत नहीं है।

रैदास चमार

रैदास का जन्म एक धनी चमार परिवार में हुआ था। रैदास के माता-पिता बड़े अमीर थे। कुछ लोगों का कहना है कि जब रैदास जी पैदा हुए, तब वे अपनी माता का दूध नहीं पीते थे। इससे उनके माता-पिता बहुत दुखी हुए। अचानक वहां स्वामी रामानंद आ पहुँचे। रैदास के माता-पिता ने उन्हें दुखड़ा सुनाया। स्वामी जी को दया आगई। उन्होंने बालक रैदास को आशीर्वाद दिया। रैदास दूध पीने लगे। जो हो, रैदास के हृदय पर प्रारंभ ही से भगवान की भक्ति ने अपना अधिकार जमा लिया था। वे बालकपन ही में प्रायः हरि नाम का प्याला पीकर मतवाला बने रहते थे।

रैदास की यह भक्ति, उनका यह प्रेम, उनके माता-पिता को बहुत बुरा लगता था। उनके माता-पिता चाहते थे कि रैदास शीघ्र ही घर के काम-काज में लग जाय। पर जिसका हृदय भगवान के प्रेम में रंग चुका है, जिसका मन भगवान की भक्ति का आसव पी चुका है, उसे घर के काम-काज से क्या प्रयोजन? माता-पिता के बहुत कुछ चाहने पर भी रैदास जी का मन संसार की ओर न झुका—न झुका।

अब माता-पिता ने एक दूसरी युक्ति सोची। उन्होंने विवाह के द्वारा रैदास को संसार की बेड़ियों में जकड़ देना चाहा। माता-पिता की इसी प्रवृति के कारण रैदास का विवाह होगया—उनकी पत्नी घर में आगई। इस पर फिर भी उनका दिल न पलटा, फिर भी उनके मन से भगवान के प्रेम की मस्ती न गई। वे पहले से भी अधिक अब रात दिन भगवान के प्रेम में निमग्न रहने लगे। उनके इस स्वभाव का उनकी पत्नी पर भी प्रभाव पड़ा। वह भी रैदास जी की तरह निरंतर भगवान के प्रेमा-राधन में संलग्न रहने लगी। पति पत्नी दोनों एक पथ के पथिक होगए। माता-पिता की सारी आशाएं मिट्टी में मिल गईं। आखिर अब उन्होंने रैदास को अपने रास्ते पर चलता हुआ न देखा, तब ऊब कर रैदास को घर से निकाल दिया। रैदास जी अपनी स्त्री सहित घर से बाहर निकल गये। और अपने मकान के पिछवाड़े एक कुटी बना कर रहने लगे। कुटी टूटी थी—जीर्ण-शीर्ण थी। उसमें गर्मी की प्रचंड धूप भी आती, और

जाड़े की भयंकर सर्दी भी। बरसात में जब पानी बरसता, तब रैदास की कुटी प्रायः पानी से भर जाया करती। मगर फिर भी रैदास को चिंता नहीं थी। वे और उनकी स्त्री, दोनों प्रसन्नता-पूर्वक अपनी टूटी कुटी में अपनी ज़िंदगी के दिन बिता रहे थे। उनका वह तापसी जीवन! क्या उससे बड़े-बड़े तपस्वियों के मन में भी ईर्षा न होती होगी।

रैदास जी दिन भर जूता बनाते। अपने लिए नहीं, पैदल चलने वाले साधु संतों के लिये। वे अपना बनाया हुआ जूता अक्सर साधु-संतों को मुफ़्त में बाँट दिया करते थे। अपनी इस उदारता के कारण कभी-कभी उन्हें भूखा भी रह जाना पड़ता था। उन्हीं को नहीं, बल्कि उनकी कुटी में रक्खी हुई भगवान की मूर्त्ति तक को भी उपवास कर जाना पड़ता था। भोग लगे तो कैसे लगे? रैदास जी तो अपने परिश्रम की सारी कमाई साधु-संतों और ग़रीब दुखियों में बाँट दिया करते थे।

रैदास की भक्ति और प्रेम पर भगवान रीझ उठे। वे एक दिन ब्राह्मण का स्वरूप धर कर रैदास की कुटी पर जा पहुँचे। रैदास के हाथ में चमड़ा और औज़ार था तथा मुख में भगवान का नाम। वे इसी में मस्त थे। उन्हें न संसार की सुध थी, और न अपनी। ब्राह्मण वेशधारी भगवान ने रैदास को पुकार कर कहा—रैदास! तू अजीब क़िस्म का आदमी है। दिन रात मिहनत करके कमाता है, और जो कुछ पाता है उसे ग़रीब-दुखियों में बाँट देता है। भला इससे लाभ क्या?

रैदास ब्राह्मण की इस बात का क्या उत्तर दे ? उन्होंने ब्राह्मण को आदर से प्रणाम करके कहा—महाराज ! कुछ लाभ हो या न हो, मुझे क्या मतलब, मैं तो अपना काम करता हूँ। मेरा काम है, भगवान के भक्तों की सेवा करना। इसलिये मैं उनकी सेवा किया करता हूँ। रैदास की बात सुन कर ब्राह्मण वेशधारी भगवान बहुत खुश हुए। उन्होंने रैदास से कहा—रैदास ! मैं एक पत्थर दे रहा हूँ। इसका नाम पारस है। तू इसे जिस चीज़ से छुआ देगा, वह सोने की हो जायगी। अगर तुम्हारे पास सोना अधिक हो जायगा तो तू साधु-संतों की अधिक सेवा कर सकेगा।

रैदास ने कहा—नहीं महाराज, मुझे यह न चाहिए। मुझे अधिक सोने से काम क्या ? मैं अपनी इसी दशा से बहुत प्रसन्न हूं। इसमें मुझको जितना संतोष मिलता है, उतना उसमें न मिल सकेगा। भगवान भी आग्रह करने से बाज़ न आए। जब उन्होंने अधिक आग्रह किया, तब रैदास ने कहा, अच्छा यदि आपकी यही इच्छा है तो कुटी के छप्पर में इसे किसी जगह रख दीजिए।

भगवान कुटी के छप्पर में पारस पत्थर रख कर चले गए रैदास ने उसे हाथ से स्पर्श करने को कौन कहे उसकी ओर आंख उठा कर देखा तक नहीं। साल भर का समय बीत गया। भगवान ब्राह्मण का वेश धारण करके फिर रैदास की कुटी पर पहुँचे। उन्होंने रैदास से पूछा—रैदास ! मेरा पारस पत्थर कहाँ है ?

रैदास ने उत्तर दिया—महाराज! आप जहाँ रख गए थे वहीं रक्खा हुआ है, ले लीजिए।

रैदास के त्याग ने भगवान के हृदय में स्थान कर लिया। वे मन ही मन रैदास की सराहना करके चले गए। दूसरे दिन से एक दूसरी लीला शुरू हुई। रैदास जब सबेरे भगवान की मूर्त्ति के आस-पास भूमि साफ़ करने लगे तब उन्हें सोने की पांच मुद्रा मिलीं। रैदास बहुत घबड़ाए। उन्होंने उसे एक ग़रीब को दे दिया। दूसरे दिन फिर उन्हें पांच सोने की मुद्रा मिलीं। उन्होंने फिर उसे एक दुखिया के हवाले कर दिया। अब भगवान से न रहा गया। उन्होंने स्वप्न में रैदास को आदेश दिया—रैदास! तू अपना आग्रह छोड़ दे। मैं तुझे तेरे त्याग का फल दे रहा हूँ। तुझे इन मुद्राओं को स्वीकार करना चाहिए।

भगवान का आदेश! रैदास बेचारा क्या करे? उसने मुद्रा एकत्रित करके रखना प्रारंभ किया। थोड़े ही दिनों में उनके पास काफ़ी रुपया इकट्ठा होगया। रैदास जी ने इस रुपए को भगवान की भक्ति के प्रचार में खर्च कर दिया। उन्होंने भगवान के भक्तों के रहने के लिए कई सुन्दर मकान बनवाए। इन मकानों में सदैव साधु-संत जमा रहते और भगवान के नाम की चर्चा हुआ करती। रैदास जी के इस कार्य को देख कर आस-पास के रहने वाले ब्राह्मण जल उठे। सबों ने राजा के दरबार में जाकर पुकार मचाई कि महाराज! रैदास जाति का चमार

है। उसे संसार में भगवान की भक्ति का प्रचार करने का कोई अधिकार नहीं।

राजा ने रैदास जी को अपने पास बुलाया। किन्तु राजा के हृदय पर रैदास की भक्ति का ऐसा रंग चढ़ा कि उसने रैदास ही के पक्ष में अपना फैसला दिया। ब्राह्मणों को लज्जित होना पड़ा। रैदास जी दूने साहस के साथ भक्ति का प्रचार करने लगे। सारे हिन्दुस्तान भर में उनका नाम फैल गया। लोग उन्हें एक सच्चा महात्मा समझने लगे।

कुछ दिनों के बाद चित्तौर की एक महारानी काशी गंगा स्नान करने गई। जब उसने रैदास का नाम सुना, तो उसकी रैदास पर अत्यंत श्रद्धा हो उठी। उसने उनके पास जाकर गुरु मंत्र ले लिया। रानी का नाम झाली था। झाली के इस काम से उसके साथ की ब्राह्मण मंडली बिगड़ उठी। सब रैदास को गालियाँ दे देकर रानी की भर्त्सना करने लगे। आखिर ब्राह्मणों की यह फरियाद राजा के कानों तक पहुँची।

राजा ने एक युक्ति से काम लिया। उसने सभा के बीच में ठाकुर जी की एक मूर्त्ति रक्खी और कहा, प्रार्थना से ठाकुर जी प्रसन्न होकर जिसके हाथ में चले जाएँगे, वही सच्चा भक्त समझा जायगा। ब्राह्मणों ने ठाकुर जी की प्रार्थना करनी शुरू की किन्तु ठाकुर जी टस से मस न हुए। ब्राह्मण लज्जित होकर बैठ गये। अब रैदास जी की बारी आई। रैदास जी ठाकुर जी की मूर्त्ति को देखते ही उनके प्रेम में तन्मय हो गए। मुख से एक शब्द भी न

निकला। ठाकुर जी से रैदास के मन की यह दशा छिपी न रही। बस, फिर क्या? वे उछलते-कूदते हुए तुरंत रैदास जी के हाथ में जा पहुँचे। सभा में रैदास जी का जय जयकार होने लगी। लोग मुक्तकंठ से उनकी भक्ति की सराहना करने लगे।

जब रानी झाली चित्तौर लौट कर गई, तब उसने रैदास जी को चित्तौर बुलाया। रैदास जी उसकी प्रार्थना टाल न सके। वे काशी से चित्तौर चले गये और वहीं उन्होंने भगवान का गुणानुवाद करते हुए अपनी इहलीला समाप्त की। रैदास के बनाये हुए बहुत से पद भी मिलते हैं। इन पदों के पढ़ने से रैदास की भक्ति और उनके प्रेम का अच्छा परिचय मिलता है। रैदास जी संसार में नहीं हैं, पर संसार के मनुष्य उनके पदों को गाकर इस समय भी उनके नाम को श्रद्धा से अपनी ज़बान पर लाया करते हैं।

४—विहारी-सतसई

प्रसिद्ध महाकवि विहारी की सतसई पर सरल सरस टीका, टिप्पणी सहित सचित्र, सजिल्द मूल्य २।) सवा दो रुपये।

५—बिस्मिल की शायरी

हैरत में है कोई तो कोई पढ़ के दंग है।
'बिस्मिल' की शायरी में जो 'अकबर' का रंग है॥

आज सभी पत्रों में पाठक आँख फाड़ फाड़ कर बिस्मिल की रचनाएँ खोजा करते हैं। व्यंग कविताओं में इस समय 'बिस्मिल' अपना सानी नहीं रखते। उनकी वही दिल को फड़काने वाली पुरलुत्फ़, मज़ेदार कहकहे लगाने वाली सभी विषयों पर चुनी हुई कविताएँ इस पुस्तक में दी गई हैं। मूल्य सिर्फ १॥) रुपया

६—दर्दे दिल

महाकवि बिस्मिल द्वारा सम्पादित प्रसिद्ध उर्दू कवियों की दिल पर चुनी हुई पुर असर कविताएँ। हिन्दी में अबतक ऐसी पुस्तक नहीं निकली। मूल्य केवल १॥) डेढ़ रुपया।

७—बलिवेदी पर

इस पुस्तक में लाड़ले राजपूत-सपूतों की वीर गाथा कहानियों के रूप में दी गई हैं। एक एक बहादुर की वीरता और साहसपूर्ण कहानी पढ़कर हृदय में साहस, और बल पैदा होता है। जीवन में जागृति आती है उन वीर स्त्री पुरुषों के प्रति श्रद्धा और भक्ति से मस्तक झुक जाता है। सचित्र पुस्तक का मूल्य दस आने।

८—हमारे हरिजन

श्री मुन्शी ईश्वरसरन एम० ए० लिखते हैं—महात्मा गांधी के महाबलिदान से हिन्दू जाति का ध्यान हमारे हरिजनों की

ओर आकर्षित हो गया और सम्पूर्ण भारत में उनके सम्बन्ध में आन्दोलन हो रहा है। इस पुस्तक में हरिजन जातियों की गणना, उनकी संख्या और उनकी कठिनाइयों का वर्णन बड़ी खूबी से किया गया है। सचित्र पुस्तक का मूल्य सिर्फ ।=) सात आना।

९—लाठी शिक्षक

हिन्दू जाति की जागृति के समय, प्रत्येक हिन्दू बालक को स्वस्थ, हृष्ट पुष्ट और लाठी आदि चलाने में दक्ष होना चाहिये। लाठी चलाना सिखाने वाली अबतक कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई थी। इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिये यह सचित्र अद्वितीय पुस्तक प्रकाशित की गई है मूल्य ।।।) बारह आना।

१०—अछूत भक्त

प्रस्तुत पुस्तक आपके हाथ में है।

११—पौराणिक कथायें

इस पुस्तक में जगह जगह चित्र देते हुए बड़े रोचक ढङ्ग से सरल, शिक्षाप्रद पौराणिक कथाएँ लिखी गई हैं। मूल्य ।=)

१२—ऐतिहासिक कहानियाँ दो भाग

यह पुस्तक दो भागों में है। पुस्तक में रोचक और सरल भाषा में भारत के महापुरुषों के संक्षिप्त में जीवन चरित्र और उनके जीवन की वे रोचक घटनाएँ दी गई हैं जिनसे वे महापुरुष हो गये हैं। सचित्र पुस्तक का मूल्य प्रथम भाग ।=) दूसरा भाग ।=)

१३—भारत के मशहूर स्थान

इस पुस्तक में भारत के मुख्य २ ऐतिहासिक, दर्शनीय स्थानों का उनकी विशेषताओं सहित वर्णन दिया गया है। मूल्य ।=)

१४—जमीन आसमान की बातें

इस शिक्षाप्रद सचित्र पुस्तक को बच्चे बड़े अचरज और कौतूहल से पढ़ते हैं। मूल्य सिर्फ ।=)॥ साढ़े छै आने

१५—बालगीत

इस छोटी सी पुस्तक में बालकों के लायक, याद करने योग्य अच्छे चुने हुए उपदेशप्रद भजन कविताएँ हैं। मूल्य =)

१६—ग्राम्य अर्थमेटिक

यह हिसाब की पुस्तक प्राइवेट स्कूलों के बहुत काम की चीज है बड़े सरल ढंग से लिखी गई है। मूल्य सिर्फ ।) आना

१७—अछूत के पत्र

प्रत्येक व्यक्ति के पढ़ने और मनन करने योग्य हिन्दू समाज के कलंक की करुण कहानी। बड़ी ही रोचक भाषा में पत्रों के रूप में लिखी गई है। मूल्य ॥।)

१८—वे चारों

एक सामाजिक मौलिक सरस और रोचक प्रत्येक स्त्री पुरुष के पढ़ने योग्य उपन्यास। मू० ॥=)

१९—एक रात

प्रत्येक स्त्री पुरुष के पढ़ने लायक पुरलुत्फ दिल में गुदगुदी पैदा करनेवाला मजेदार एक मौलिक उपन्यास। पढ़ते ही तबियत फड़क उठती है। मूल्य ॥=) दश आना